श्री १०८ श्री टाटाम्बरीजी महाराज

श्रीरामगुरवे वशिष्ठाय नमः

भूमिका

प्रिय पाठकों ! बड़ाही हर्षका विषय है कि आज हम सबोंके सामने यह अनुपम सम्पत्ति फिर से प्रगट हुई है। इस सम्पत्ति का स्वरूप भी भूत पूर्व सम्पत्ति से अपूर्व तथा सर्व सुलभ और सर्व सुखदही प्रतीत होता है। अर्थात् यह मन्त्र-रामायण पहले भी संस्कृत व्याख्यान के रूपमें हम सबोंको प्राप्त थी परन्तु सर्व साधारणों (अल्प ज्ञानियों) के लिये तो नहीं के समानही थी। अतः सर्व सुगम तथा सर्व सुखद बनाने की अभिलाषासे कतिपय महात्माओं के आग्रह वश हमारे परम प्रिय श्रीटाटाम्बरीजी महाराज ने अपना अमूल्य समय इसके लिये प्रदान कर अत्यन्त सीधी साधी (भोली भाली) महात्माओंकी भाषा में तथा देहातोंकी भाषामें अनुवाद किया और पुष्पांजलि के समान भाष्यकार भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके श्रीचरणों में सादर समर्पण कर दिया है। यह भाषानुवाद मंत्र रामायण एक अपूर्वही वनकर प्रगट हुआ है। इसमें वेदके मन्त्रों द्वारा परात्पर प्रभु श्रीसीतारामजीका माधुर्य मय चरित्र समग्ररूपसे वर्णन किया गया है। अर्थात् जन्म विवाह वनवास आदि आदि साकेतारोहण पर्यन्त समस्त चरित्रोंका वर्णन विभिन्न मंत्रों द्वारा किया गया है। पुनः श्रीरामरक्षा स्तोत्रका तथा श्रीब्रह्म गायत्रीं का और श्रीरामषडक्षर

मन्त्र का भी गूढ़तर आशयोंको प्रस्फुट कर दिखलाया गया है यह ग्रन्थ क्या है मानों मोह रूपी अन्धकार में विचरण करते हुए मग्न रहने वाले नास्तिकोंको उक्त अन्धकार से निकालने केलिये दया परवश रहने वाले महात्माओंके हाथों की ज्योति है। और वादी विवादी पाखण्डी रूपी मतवाले गज वाजोंके लिये तो अंकुश ही है अपरंच भगवत् भक्ति रस रसिक जनोंके हृदय कमल रंजनार्थ तो साक्षात् भुवन भास्कर भगवान सूर्य के ही समान है। इस मंत्र रामायण की प्रशस्ती में जो कुछभी शब्द कहे जांयगे सब थोड़ेही होंगे अतः विशेष भूमिका नहीं लिखकर हम अपनी लेखनी को रोकते हुए श्रीटाटाम्बरीजीके परिश्रम के लिये और संशोधकजीके परिश्रम के लिये श्रीरामजी के श्री चरणोंसे निरन्तर शान्तिप्रदान की भिक्षा याचना करते हैं।

अलमिति

श्री पञ्जाबी भगवान् श्रीरामचन्द्रदासः
जानकी घाट अयोध्याजी

—ॐ समाप्त ॐ—

सूचना

बन्धुओं ? यद्यपि इस प्रेस से सावधानता पूर्वक ही कार्यवाहन हुआ है तथापि कुछ पुराने अक्षरों के मिल जाने से कुछ पंक्तियोंमें कहीं-कहीं मात्रोंका और कहीं-कहीं अक्षरों का स्पष्टी-करण नहीं हुआ है अतः आप पाठ करनेके समय उन त्रुटियों को सुधार कर ही पाठ करेंगे।

इति निवेदयते—

संशोधकः।

धन्यवाद

आज मैं स्वनाम धन्य तथा परम वीतरागी एक विशिष्ट पुरुष के निमित्त धन्यवाद देने के लिये निज लेखनी को उठाया हूँ। परन्तु लेखनी स्वतः जड़ स्याही काली-हस्तांगुलि निरंकुश-मन स्वभाव सिद्ध चञ्चल-कर्ण पथ रसन-विहीन और रसनेन्द्रिय भी श्रुति-विहीन इस प्रकार समस्त साधन-विहीन होता हुआ भी केवल लेखनी-चरितार्थ के लिये एकमात्र प्रफुल्लित हृदय कमल के अणु-अणु खण्डों से सादर धन्यवाद देता हुआ श्रीटीकाकार जी से पुनः पुनः प्रार्थना करूँगा कि ऐसी ही कृपा मेरे ऐसे के लिये निरन्तर बनाये रक्खें।

अलमिति—

प्रकाशकः।

❀ श्रीःपातु ❀

❀ श्रीसद्गुरवे नमो नमः ❀

❀ अथ परम्परा स्मरणं प्रारम्भः ❀

— ❀○—

श्रीमद्योगानन्द योगिवर्य्य कुल तिलक सकल श्रुतिशास्त्र

पुराणादि वाङ्मय पारावार पारीण श्रुतिसिद्ध

जनकजा घट्ट निवासि साधुकुल कमल

प्रभाकर श्रीमत्स्वामि १००८, श्रीराम-

वल्लभा शरणाचार्य्य चरण

चचंरीकेण जनककिशोरी

दासेन संकलितम्

सन् १६-४४

ईश्वीये

-:❀:-

❀ श्रीजानकी बल्लभो विजयतेतराम् ❀

॥ प्रार्थना मंगलम् ॥

सर्वानन्दकरं रामं रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥
युग्ममन्त्र प्रदातारं वन्देऽहं तत्त्वपारगम् ॥ १ ॥

❀ अथ प्रश्न परम्परा लिख्यते ❀

एकदा सुखमासीनं सद्गुरुं सुस्मिताननम् ॥
शिष्यो वेदान्ति वर्यस्तु पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ २ ॥
भगवन् कारुणीकेश वेदवेदाङ्गपारग ॥
ज्ञातुमिच्छाम्यहं सर्वा पूर्वेषां या परम्परा ॥ ३ ॥
कथं कस्मै पुरा प्रोक्तः केनादौ मन्त्रराडयम् ॥
कथं च भुवि विख्यातो युग्मतत्त्व प्रदर्शकः ॥ ४ ॥

❀ अथ प्रश्नोत्तरो लिख्यते ❀

प्रियस्य वचनं श्रुत्वा दयालुः प्रेम वारिधिः ॥
उवाच श्रूयतां तात वक्ष्याम्येतद्यथा क्रमम् ॥ ५ ॥
परधाम्नि स्थितो रामो भवमग्नजनोद्धरः ॥
कृपया परयाविष्टो जानक्यै तारकं ददौ ॥ ६ ॥
श्रियः श्रीरपि लोकानां दुःखोद्धरणहेतवे ॥
प्रददौ वायुपुत्राय सदा रामांघ्रिसेविने ॥ ७ ॥
तस्मात्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ॥
श्रयीसारमिमं धातु र्वशिष्ठो लब्धवान्परम् ॥ ८ ॥
पराशरो वशिष्ठाच्च मुद्रा संस्कार संयुतम् ॥

मन्त्रराजं परं लब्ध्वा कृत्यकृत्यो बभूवह ॥ ९ ॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृंहणम् ॥ १० ॥
व्यासोऽपि लोकलोकेषु मन्वानोऽखिल योग्यताम् ॥
परमहंसाय शुकदेवाय दत्तवान् ॥ ११ ॥
ब्रह्मचर्य्य व्रते संस्थ आचार्यः पुरुषोत्तमः ॥
ततो बौधायिनीं प्राप्य वृत्तिं कृत्वाऽमरं गतः ॥ १२ ॥
स चापि परमाचार्य्यो गंगाधर सुयोगिने ॥
मन्त्राणां परमं तत्त्वं राममन्त्र मुपादिशत् ॥ १३ ॥
आचार्य्यसेवानिरतः सदाचार्य्यो विशालधीः ॥
तस्मात्प्राप्य परं मन्त्रं स्वेष्ट सिद्धिमथागमत् ॥ १४ ॥
यती रामेश्वराचार्य्यस्तस्मात्प्राप्य सुखार्णवम् ॥
ऐहिकाकस्मिकं भुक्त्वा निर्वाणपद मालभत् ॥ १५ ॥
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतोऽभवत् ॥
ददौ स देवानन्दाय ज्ञानवैराग्यशालिने ॥ १६ ॥
श्यामानन्दश्च तस्माद्धि प्राप्य मन्त्रं महोज्ज्वलम् ॥
निवृत्तोऽज्ञानं तमसा स्वेष्टै सारूप्यतामगात् ॥ १७ ॥
श्रुतानन्दाय शिष्याय ददौ सोऽपि षडक्षरम् ॥
आत्मसाक्षात्करं श्रुत्वा परानन्दपदं गतः ॥ १८ ॥
चिदानन्दस्तु तच्छिष्यश्चेत नाचेतनंकरः ॥
लोकोपकार मकरोद्भक्त्या पीयूषधारया ॥ १९ ॥
पूर्णानन्दाय प्रादात्तु सोऽपि मन्त्रं महामुनिः ॥
अनुध्यायञ्जपन्नित्यं पारमेष्ठ्यं पदं ययौ ॥ २० ॥
श्रियानन्दाय शिष्याय ह्यात्मसेवापराय च ॥
अभ्यदात्तारकं मन्त्रं सानुकूल्य फलप्रदम् ॥ २१ ॥
हर्य्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दांघ्रिसेवकः ॥

संगृह्य मनुमेतस्माद्रसाचार्य्यत्वमाप ह ॥ २२ ॥
तस्य शिष्यो महामान्यो राघवानन्द विश्रुतः ॥
अनुष्ठीय महामन्त्रं ह्यवाप बहुगौरवम् ॥ २३ ॥
तस्यैव शिष्यतां प्राप्तो रामो राजीवलोचनः ॥
आनन्द गुण वैशिष्ट्याद्रामानन्दोऽखिलेष्टदः ॥ २४ ॥
एतस्माद्गुरुवर्य्याच्च योगानन्दस्तु 'योगिराट् ॥
अवाप्य ह्यनुसन्धाय योगसिद्धिपदं ययौ ॥ २५ ॥
मयानन्दो मुनिवरस्तस्मात्संगृह्य वै मनुम् ॥
मननान्मुनिसंघेषु ह्याचार्य्यत्वं जगाम ह ॥ २६ ॥
जगद्गुरु भगवति स्तुलसी दास नामतः ॥
विख्यातिमगमल्लोके तस्मात्प्राप्य महामनुम् ॥ २७ ॥
नयनूरामदासेति नाम्ना यो लोकविश्रुतः ॥
सोऽपि तस्मान्मनुं प्राप्य ध्यानान्तफलमालभत् ॥ २८ ॥
एतस्मान्मन्त्रमग्राही छलवीर्य्य प्रतापवान् ॥
रामचौगानि दासो हि दिक्षु तुर्येषु विश्रुतः ॥ २९ ॥
ऊधो मैदानि दासेन पंचसंस्कार पूर्वकम् ॥
महामनुश्च सम्प्राप्तं महर्षेर्मानितात्मनः ॥ ३० ॥
खेमदासस्ततो लब्ध्वा कल्याणपथमाश्रितः ॥
रामदासाय प्रददौ शिष्याय शुभकांक्षणे ॥ ३१ ॥
सुधी लक्ष्मणदासोऽपि ततः प्राप्य षडक्षरम् ॥
देवादासाय प्रददौ प्रजप्तश्च महामनुम् ॥ ३२ ॥
मुनिवर्य्यस्य तस्यैव शिष्योऽभूद्योगवित्तमः ॥
श्रीभगवानदासेति नाम्ना लोके प्रपूजितः ॥ ३३ ॥
श्रीबालकृष्णदासेन महर्षेः पूजितात्मनः ॥
सिद्धाय वेणिदासाय प्राप्तं स च मनुं ददौ ॥ ३४ ॥
तस्माद्भगवतः प्राप्य दासः श्रीश्रवणाभिधः ॥

सायुज्यताम् इति पाठः सम्यक् विशिष्टाद्वैत सिद्धान्ते सायुज्यम् नि स्वीकारात्।

राम वचन दासाय ददौ मधुर वाक्सुधीः ॥ ५ ॥
ज्ञानवैराग्यभक्तीनामास्पदं श्रीमतामवरम् ॥
कोटि जन्मार्जिताघघ्नं वन्दे परमसद्गुरुम ॥ ३६ ॥
तस्माच्च सद्गुरोर्लब्ध्वा देवानामपि दुर्लभम् ॥
तुभ्यं प्रादामहं तात गुह्याद्गुह्यं हि तारकम् ॥ ३७ ॥
एषा परम्परा नित्या प्रोक्ता ते सम्प्रदायिनाम् ॥
मन्त्रराजस्य युग्मस्य भूम्यामेवमवातरत् ॥ ३८ ॥

❀ अथ श्रवणान्त-प्रक्रिया लिख्यते ❀

श्रीमान्पूज्यश्च वेदान्ती श्रुत्वा परम हर्षताम् ॥
प्राप्य साष्टांग प्रणतिं कृत्वा चेदमुवाचह ॥ ३९ ॥

❀ अथ कृपाभिवादनम् लिख्यते ❀

श्रुत्वा पीत्वा सुसद्वाणीं मुक्तिद्वार विलासिनीम् ॥
अभवं कृपया तेऽद्य निमग्नोऽहंसुखार्णवे ॥ ४० ॥

❀ अथ परम्परा माहात्म्यं लिख्यते ❀

यः पठेच्छ्रद्धया नित्यं पूर्वाचार्यपरम्पराम् ॥
मन्त्र राजरतिं प्राप्य सद्यः सामीप्यताम्व्रजेत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदाचार्य मुखपद्माद्विनिः सृतम् श्रीचरणार्चक जनकिशोरीदास सुसंकलितं श्रीपरम्परा स्मरणम् समाप्तम् ॥

—❀—

स्वामि श्री ईश्वराचार्यजी महाराज
जास्येदं कृति।

॥ ओं रां ओं ॥

॥ श्री जानकी वल्लभो विजयतेतराम् ॥

* अथ मन्त्र रामायणम् *

श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

ओं नमः परमहंसास्वादित चरणकमल चिन्मकरन्दाय भक्तजन मानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ॥

रामायणद्रुमं नौमि रामरक्षानवांकुरम्।
गायत्रीबीजमाम्नायमूलं मोक्षमहाफलम् ॥१॥

गायत्री रूप बीज श्री रामरक्षा रूप नव नवीन अंकुर वेद रूप मूल श्री रामायण रूप द्रुम को नमस्कार है ॥ १ ॥ अब श्री रामरक्षा का श्री रामायण रूप वृक्ष के अंकुरत्व का स्पष्टरूप है जाना जाता है। उसमें स्थित श्री राघवादि पदों का क्रम से श्रीरामायणार्थक सूचित होने से पुनः श्रीरामरक्षा का गायत्री रूप बीजत्व को वेद रूप मूलत्व का उपपादनीय है। उससे श्री रामायण का भी वह उभयत्व सिद्ध होता है। इसीलिये श्रीरामायण चातुर्विंशति साहस्त्र संख्या वाली हैं वैसे ही चतुर्विंशति गायत्री के अक्षर भी हैं। एकैक अक्षर पर एकैक सहस्त्र श्लोक को महर्षि श्रीवाल्मीकजी ने संगृहीत किया है। यह कथन अभियुक्त पुरुषों से प्रसिद्ध जाना जाता है। तथा श्री रामायण का वेदत्व उक्ति से प्रत्यक्ष वेद का मूलत्व उपपन्न होता है।

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ तस्माद्रामायणं देवि वेद एव न संशयः" अगस्त संहितायाम्। सतुमेधाविनौ दृष्ट्वा वेदार्थे परिनिष्ठितौ। वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत्प्रभुः ॥ काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ॥

वेद से वेद्य (परे) परमपुरुष श्री दशरथ महाराज जी के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए। वैसे ही वेद श्रीरामायण रूप में प्राचेतस वंश में अर्थात् वरुणदेव के पुत्र महा ऋषि श्री वाल्मीकि जी के सकासात् उत्पन्न हुए। हे देवि पार्वति इस हेतु से श्री रामायण वेद ही है। इसमें संशय नहीं जानना-यह वचन अगस्त संहिता का है। स प्रभुः, वह वाल्मीकिजी कुशलव को वेदार्थमें श्रद्धा रखने वाले (प्रवीण) परम बुद्धिमान इन दोनों को देखकर वेदके उपबृंहण करने के लिए श्री रामायण का अध्ययन कराते भये। काव्यं श्लोक रूप में श्री रामायण को और श्री जी के महान् पाप हरण चरित्र को भी किये। इति, उसका वेदोपबृंहण प्रयोजकत्वप्रतिपादनसे आर्ष बचन जाना जाता है। तत्र, वहां पर गायत्री का अर्थ, तावत्, तबतक (सवितुः) इस पद का अर्थ ब्रह्माण्ड रूप वृक्ष का उत्पत्ति स्थान भूमि की योग्यता है (तत्) प्रसवितृरूपं, वह उत्पत्तिरूप भू स्थानीय है। दूसरा वाक्य यह है कि (वरेण्यं) इस पद का अर्थ वरणीयं स्मरणीय भजनीय अर्थात् मोक्षेच्छु वों से ब्रह्माण्डरूप वृक्ष का (प्रविलायन) लय होने से (अनुसर्त, अर्थात् पीछे से जो चलने योग्य

(एवं च) तदिति तत् ब्रह्म यह इसका महान् होने वाला नाम ।

तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवतीति श्रुतिसे ॥

यह श्रुति के प्रमाण से । वह पदके कहने पर ब्रह्ममें सवितृ-पदसे कार्यमात्रका अध्यारोप करके वरेण्य पदसे उसका अपवाद करके निष्प्रपञ्चको ब्रह्म का पारमार्थिक रूपका निरूपण किया गया तथा उसीका सवितुर्भर्ग नाम होनेवाला भाविगति इसकी इस व्युत्पत्ति से सूर्यमण्डलान्तस्थको श्रीरामनामवाले ज्योति है। जो यह अन्तर आदित्यमें प्रकाशमय पुरुष विद्यमान है।

"य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः ॥"

इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध माया विशिष्ट रूप उपास्य देखा गया है। (धीमहि) इस पद से अन्वय नाम संबन्ध होनेसे तथा (देवस्य) इसपद का उसीके ब्रह्माण्डके भीतर जो नाना अवतारों से लीला करनेवाले श्रीरामरूपसे [illegible] तीसरा रूप कहा गया है तथा धीमहि इस पद से विरोधपूर्वक नाम पहले विरोध करनेवाले जो रावण कंसादिक, १जीव अपने स्वार्थ को देखता है, २उभयार्थ नाम लोक परलोक अर्थात् लोक सिद्धि और परलोक सिद्धि को देखता है, ३ ईश्वरार्थ नाम निष्काम द्वारा भगवत्प्राप्ति को देखता है, यह चतुर्धा भजनको सदा ही देखता रहता है । तथा तृतीय पादसे यह देखता है कि मैं बहिर्मुख स्वभाव वाला होगया हूँ अब अन्तरमुख देखने से हममें व्यापी के विशेषरूप प्रेरणा पर प्रत्यगात्म स्वरूप के अन्तिमदशा जो मोक्षरूप इस जीवात्मा का हेतुत्वदर्शन से उस जीवका ही सकल कर्मका फल रूप उपासना रूप प्रयोजन कहा गया है। एवंच गायत्री में काण्डत्रयको दर्शित किये । तथाच मैत्रायणी श्रुति है यह।

"तत्स वितुर्वरेण्यमित्यसौ वा आदित्यः सविता स वा एवं प्रवरणीय आत्मकामे नेत्याहुर्ब्रह्मवादिनः" इति। भर्गोदेवस्य धीमहीति सविता वै देवस्ततो योऽस्य भर्गस्तं चिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिन इति" धियो योनः प्रचोदयादिति बुद्धियो वै धियस्ता योऽस्माकं प्रचोदयादित्या हुर्ब्रह्मवादिनः"

तत्सवितुर्वरेण्यम्, यह आदित्य है वा सविता परमात्मा है वही प्रवरणीय है अर्थात् षोडशोपचार से पूजनीय हैं आत्मकाम से ब्रह्मवादीजन कहते हैं कि यह भर्गोदेवस्य धीमहि, यह सविता निश्चय देव है उसमें जो इसका भर्ग नाम तेज है तेजविशिष्ट देव को मैं चिन्तन करता हूं, यह वार्ता ब्रह्मवादी सन्त कहते हैं यह। धियोयोनः प्रचोदयात् यह बुद्धि ही धिय है अर्थात् ज्ञान का सीमा है वह जो हम सबों का प्रेरणा करे अर्थात् अपने श्री चरणों में प्रीति लगावे यह ब्रह्मवादी कहते हैं इति। यहां पर

आत्मकाम से प्रवरणीय स्वीकरणीय है यह सवितुः देवका प्रत्यगात्मत्व ज्ञान काण्डार्थ कहा चिन्तयामि यह चिन्ता योग्यस्वरूप उपासनाकाण्डार्थ कहा। धिय इस पदसे अनेक प्रकार धीका प्रेरकत्वरूपकर्मकाण्डार्थ कहा तत्राद्य तहां आदि उपेय कहा और दूसरा सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट नाम दूर उसके प्राप्ति रूप यह दोनों हैं। एवं वेद माता गायत्री का कांडत्रयात्मक से गायत्री से उत्पन्न होने वाले जो वेदोंका मूल श्रीरामार्थ आदियों का और तथात्वं वैसे जानने योग्य है। ये ही अर्थ श्रीराघवादि बीशों २०नामों से श्रीरामरक्षामें अवयवरूप अर्थद्वारा देखागया है।

तथाहि—शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः। कौशल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ॥१॥ घ्राणं पातुमखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥ जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठं भरतवंदितः ॥ २ ॥

रंघति नाशं गच्छतीति रघुः अर्थात् नाश धर्म प्राप्त होने से रघु कहाता है यह रघु कैसा है व्यष्टि समष्टि रूप अन्नमयकोश है तत्र रघु में रहने से राघवः कहा जाता है और ब्रह्माण्डाभिमानीदेव राघव है वह मेरे ब्रह्माण्डरूपशिर का रक्षक हो। वही राघव दशेन्द्रियरूप अश्वों से युक्त मनोमयकोश रूप का आत्मा के समान आत्मा कार्य होने से प्राणमयकोश कहाता है उससे जायमान तेज उसके कारण से अन्नमय से (अन्तर) अलग होकर प्राणमय कोश है इससे भी पृथक् मनोमय यह पूर्व होनेवाले जो दो का (प्रविलायनं लय करके सिद्ध होते हैं, वह और वासना रूप तन्तु का सन्तानरूप मनोमयकोश ब्रह्माण्डसे सृष्टि क्रमसे अर्वाचीन नाम नूतन वा नीचे भाल ललाट देशको अर्थात् ब्रह्मलिपिस्थानको (मेरा) पातु। कुशलैव कौशल्या मंगलमयी होने से कौशल्या कही जाती है और सर्वार्थ का प्रकाशक समर्थबुद्धि होने से, उसमें होवे वह कौशल्येय नाम विज्ञानमय जीव उससेभी भिन्न वह मेरे) दर्शन साधन दोनों नेत्रों का रक्षक बनो। इनसेमनोमय का भीअपवाद नाम प्रतिपादक रूपको कहा। विश्व संसार भरका मित्र उपाधिरहित प्रेमके साक्षात्कार से अतिप्रियको आनन्दमय नाम आत्मा ही विश्वामित्र है उसका

भी प्रियतम हो। जैसे सुषुप्ति अवस्था में सत ब्रह्म के साथ सम्पन्न होता है यह।

"सुषुप्तौ सता सोम्य तदा संपन्नो भवतीति"

यह श्रुति के गमकसे। प्राप्त होते हुये आत्यन्तिक दुःख, निवृत्ति कर उसका अधिष्ठान भूत आनन्द ब्रह्म है, छद्डापुच्छ ब्रह्म, यह दूसरा पर्याय है, अर्थात् नाम है (मेरे) दोनों कानों को स्वाधिगम नाम अपने अधिगम प्राप्त ब्रह्म द्वार भूत होनेपर पातु। वही प्रथमपाद से श्रीरामजी मे ब्रह्माण्ड को आरोप कर के अन्तिमपाद तीनसे(अपोद्य) अपवाद करके और श्रीरामजी शुद्ध रूप ब्रह्म को गायत्री प्रथमपादोक्त देखाया है। यह समस्त अर्थ को भी वेदान्त प्रसिद्ध होनेसे यह मूल वाक्योंका उदाहरण नहीं दिया गया है अर्थात् आनन्द प्रतिपादक वेद मंत्र नहीं कहा गया है। मखत्राता, अव्यभिचारेण नाम अनन्यभाव से यज्ञ का फलप्रद कहा है।

"फलमत उपपत्तेः"

फलरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं यह सार्थक है वह (मेरे) यज्ञ फल भूत दिव्य गन्ध रस आदि का उपलब्धिकरण जो घ्राण और रसनेन्द्रिय आदि को पातु। (सौमित्रि वत्सल) सुन्दर मित्र जीवरूप पक्षी का सखा ईश्वर है उसका पुत्र होने से सौमित्रि कहा गया वह हिरण्यगर्भरूप है अर्थात् कार्य ब्रह्म का नाम है उसमें वत्सल नाम प्रेम हो उससे उसका तादात्म्य अभेद प्राप्त उपासकों का अनुग्रहकर्ता कहा गया है। सौमित्रिके मुख्य कार्य होने से वत्सल है वह मेरे मुख को पातु। यह दोनों पद अन्तर्यामी और सूत्रात्मा ये दोनों एक विद्या द्वारा प्राप्त होते हैं नतु शुष्क तर्क से प्राप्त होते हैं विद्या प्राप्ति द्वारभूत होकर (मेरी)

जिह्वा को विद्यानिधि अर्थात् विद्या संप्रदायप्रवर्तक होकर रक्षक बनो। विद्या भी यज्ञादि का अपूर्वफल प्राप्ति से अर्थात् अलौकिक फल होने से।

"विविदिषन्ति यज्ञेन"

यज्ञ द्वारा ब्रह्मको जानने की इच्छा से करते हैं श्रुति। अतो भरतैः कर्मठै वन्दित, कर्मकारियों से प्रार्थित अर्थात् शरण किये गये हैं। भरंति कर्मफलं संचिन्वन्ति तेभरता:, अर्थात् कर्मफल को भरण पोषण एकट्ठा करे वेभरता नाम कर्मकारी रूप यजमान।

भरतमुद्धर।

यह मंत्र प्रमाण से यज्ञ कब होगा जब कंठस्थही मंत्र होनेसे स्तोत्र किसे कहते हैं सामवेदादिक ऋचों से जो गायन की जावे वह स्तुति स्तोत्र कहा जाता है। शस्त्र किसे कहा जाता है मंत्रद्वारा आहुति छोड़ा जावे वह स्तुति शस्त्र कहा जाता है इन दोनों से प्रति पादन किया जाता है। यह यज्ञ प्रिय श्रीराम जी मेरे मंत्रोच्चारणस्थान जो कंठ को मातु रक्षा करें। वही यज्ञादिमे जायमानपुण्यसे प्राप्त होगया है उपासना मार्ग जिसका सवितादेवका भर्ग नाम तेज समूह नाम धारी सूत्रात्मा और ईश्वर को क्रम मुक्ति द्वार अर्थात् विदेह शरीर त्यक्त होने पर जो मुक्ति को प्राप्त होता है। श्लोकद्वयका तात्पर्य है ॥८॥१॥२॥

स्कंधौ दिव्यायुधः मातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ॥३॥

श्रीराम प्रभु मानुष शरीर धारी होने पर भी ईश्वर सम्बन्धि जो दिव्या युध धनुषवाणादियों का धारित्वाद से दिव्यायुध आयुधनिधानरखनेका स्थान दोनो कंधाओंको मेरे पातु। तथा भुजबल से ही भग्नेश कार्मुक अर्थात् शिवधनुष खण्डन करने वाले मेरे दोनों भुजाओंको पातु। यहां पर ईसकार्मुक मेरू पर्वत के समान रूप है।

"रथः क्षोणीयन्ता शतधृति रगेन्द्रो धनुः"

रथ पृथिवी है ब्रह्माजी रथ सारथी हैं अगेन्द्र मेरु पर्वत धनुष है। यह त्रिपुरवधमें कहा है उनका वह कार्मुकत्व प्रसिद्ध है। इस हेतु से मानुष भाव होने पर भी शिव से भी अधिक देखाया है। वैसे वीर्यपराक्रम ही जिसका मूल्य है श्री जी का करग्राही श्रीपति मेरे दोनों करों को पातु। इस नाम द्वय से अर्थात् श्रीपति और दिव्यायुधधारी से श्रीविश्वामित्र से दिया हुआ जो बला विद्या इसका फलरूप शारीरिक बलको अधिक देखाया है। और जो दूसरी अतिबलाका फलरूप मनके संकल्प मात्र से अलौकिक अर्थका साधन है और वह जमदग्नि कुमार को जितने वाले श्रीरामजी, परशुरामजी कैसे हैं, ब्राह्मं वैष्णवं ब्रह्मा सम्बन्धि और श्रीविष्णु संबंधि तेजों को धारण करनेवाले जो परशुरामजी के उन तप के समूह जो पुण्य उसको नाशकिये यह स्पष्ट व्याख्यान है। अतएव हार्द बलवान है अतः मेरे हृदय को पातु। अर्थात् ऐसे ही बलको मेरे हृदयमें धारण करें। एवं तीसरा परमेश्वर रूप को होने से श्रीब्रह्मा विष्णु शिव इन तीनों से अधिक मानुष भाव होने पर भी है। तृतीय श्लोक से गायत्रीस्थ देव को इस पद का अर्थ देखाया है ॥ ३ ॥

मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जांबवदाश्रयः ॥

सुग्रीवेशः कटिंपातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥४॥

उसके ही चतुर्थ भजन को कहा जाता है। खरादि राक्षस द्वेष पूर्वक श्रीरामजी का ध्यान करते हैं, न ध्यान करने वालेके अपेक्षा श्रेष्ठ होनेसे उनमें भक्ति का अभाव होनेसे मध्यम अवस्थाके हैं। उनराक्षसों में निग्रह मुखसे श्रीराम जी का अनुग्रह हुआ है वहभी मध्यमही है अतः उसका कर्त्ताखर ध्वंसी श्री रामजी मध्यमा वस्था वाले हैं। नाभिके साथसम नाम बराबर सूत्र पृष्ठ प्रदेशको मेरे पातु। जांबवान आपत्कालोंमें अपने प्रयोजनकेलिये ही काम पूर्वक ध्यान किये हैं द्वेषांश भाव वाले जो खरादि हैं उनसे (अन्तर) अधिक भावयुक्त हैं जांबवदाश्रयजो श्रीरामजी मेरे नाभि भागका अर्थात् मध्य भाग से अभ्यन्तरको पातु। सुग्रीवका तो यह कथन हैं कि।

देहिमे दादमिते।

देस यह श्रुति गमक से जाना जाता हैं कि पहले मेरा मनो कामना पूर्ण करो पश्चात् आप का कार्य करूंगा। अर्थात् पहले स्वार्थ संपत्ति सिद्ध होने पर पश्चात् आराधन करूंगा जैसे वणि कवत् व्यवहार से जांबवान अपेक्षा से कुछ न्यूनत्वभाव है। सुग्रीवेश श्रीरामजी मेरे बाह्य भाग कटि देश को पातु। श्रीहनुमानजी तो केवल निष्काम श्रीरामार्थही भजनयुक अन्तरंगत्व अर्थात् यत्कि ञ्चत् चाहने वाले हैं जैसे शिशु बालक केसमान प्रियत्व होनेसे अंक में रखने के लिये योग्य होने से हनुमत्प्रिय श्रीरामजी मेरे सक्थिनी नाम अंक देश नामगोदी देश को पातु। एवं व्यक्तस्य प्रत्यक्ष देवका चतुर्विधध्यान करनेवाले चतुर्विधभक्त कृत चतुर्थश्लोकसे देखाया गयाहै ॥ ४ ॥

जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखांतकः।

पादौ त्रिभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलंवपुः ॥५॥

अथ अब प्रत्यक्ष के परित्यागसे अव्यक्त का अव्यक्तत्व से संसार समुद्र का सेतु रूप के गतेः प्राप्त का प्रदाता से (सेतु) फल सेवित श्रीरामजी जानुनी घूठना शिशु का प्रथम गति चलनेका साधन होनेमें प्रयोजन है मेरे जानुनी को पातु। इससे स्थूल देहसे अति क्रमण कहा गया है। इस अवस्थामें ध्यायी ध्यान करने वाले को विदेह कहा जाता है। तैसे दशेन्द्रिय रूप मुख जो भोग द्वारा हो जिसका वह दशमुख लिंग नाम सूक्ष्म शरीर रूप हो उसका अन्तक नाशक प्रविलापयिता नाम नाशकारयिता नाशकारी श्रीरामजी हैं। थोड़ा दृढ अग शिशुका मंद शनैः शनैः ऊर्ध्वगति नाम ऊपरको उठने का साधन मेरे दोनों जंघा को पातु। इनसे लिंग देहका अति क्रमण कहा गया है। इस अवस्थामें ध्यायी पुरुष का प्रकृतिलयको यह कहा जाता है। तैसे। विगतं भीषणं भयंकरं अज्ञानंयस्य अर्थात् समस्त अविद्यासे रहित उसके लिये श्रीः।

एषास्य परमा संपत्।

इसका श्रेष्ठ धनहो इस श्रुति प्रसिद्ध आनन्द उसश्री का प्रदाता होने से त्रिभीषणश्रीद कहा। निघृष्टतल नाम घिसनेवाला जो नीचेका तरवा भाग अर्थात् शीघ्र गति का हेतु भूत दोनों मेरे पादों को पातु। इससे यह देखाया गया है कि अनर्थ निवृत्ति पूर्वक आनन्द का अवाप्ति कहा गया है। इस अवस्था में ध्यायी जन्मुक्त कहा जाता है। श्रीरामसर्वेश्वर होने से समस्त ब्रह्माण्ड रूप मंडपमें रमण शील अर्थात् मनुष्याकार बनकर क्रीड़ा करते फीरते हैं वह मेरे जीवन्मुक्त भाव को कामयमान का अखिल शरीर अर्थात् स्थूल सूक्ष्म और

कारण शरीर इन त्रिविधको भी पा. | समस्त योग का प्रति पक्ष शत्रुवों का निरासते ब्रह्म साक्षात्कार में समर्थकर उस ब्रह्म में श्रीरामशब्द से अध्यारोपित प्रपञ्चको किये हैं। दशरथात्मज आदि पद तीन से अपवाद कथनका अधिष्ठान नाम आधारको प्राप्ति के लिये ध्यानका अवलम्बन होने वाले भगवानकी समष्टि रूप और व्यष्टि रूप को दोश्लोकोंसे देखा करके व्यष्टि उपासना को चतुर्थ भावसे समष्टि उपासना को पञ्चम श्लोक के आधेश्लोक से देखा करके बाकि बचे हुओंसे अनर्थ निवृत्ति करके आनन्द प्राप्ति पूर्वक जीवन्मुक्त सहित निरूपण करनेमें यही पर समस्त शास्त्रार्थ है इस प्रदर्शन से श्रीरामायण रूप द्रुम का अंकुरके श्रीराम कवच की गायत्री रूप बीजत्वका उपपादित है। जैसे यहां पर कथांश भाग स्पष्ट सूचित होता है और अध्यात्मांशपक्षमें तो अप्रत्यक्ष वृत्तिसे जाना जाता है। एवं श्रीरामायण में उनके मूलभूत वेदमें दोनों ठहीन जानने योग्य है ॥ ५ ॥

तथाहि "मंत्रह्रदात्कथा कुल्या विद्या केदार मागता ॥ मोक्ष [रस] स्प च प्रसूर्मध्ये पीयते कर्म मार्गगैः ॥ १ ॥ तुम्रो ह भु ज्युम श्विनोदमेघे रयिन्नकश्चिन्ममृवान्वामबाहाः॥तमूहथुनौभिरात्मन्वतीभि रंतरिक्ष प्रुद्भि रपोदकाभिः ॥ २॥

तथाहि ऋग्वेदादि मंत्र रूप तलाब से श्रीभगवत्कथा रूप मोरीसे विद्या वा प्रेम रूप खेत को प्राप्त हुये। मोक्षरसकी ओर (प्रसूर्मध्ये) इत्यादिका के मध्यमें (कर्म मार्गगैः) कर्म रूप मार्गों से चलने वाले (पीयते) प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ यह वेद

देवगण निषेदुः) ठहरते भये हैं।

"यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमेसमासते ।

(यः) जो (तन्न) उसको नहीं (वेद) जानता है (किमृचा) ऋचा वेद क्या करेगा (य इत्) जो इसको (तत्) वह (विदु) जानता है (ते) वेसब (इमे) यह (समासते) सम्यक् निवास करता है। यह मंत्रसे समस्त ऋचाओं का और सब इन्द्रियोंका अधिष्ठान भूत परमात्मा व्योम शब्दित ब्रह्मपरत्व का निश्चय होने से। जो नहीं जानता है वह अध्ययन का वैयर्थ्यके अभिधान से और अध्यात्मपर होनेसे यह मंत्र व्याख्यान करने योग्य है। तब यह अर्थ है कि (तुक्) अपत्यं राति अर्थात् तुक् राजा का पुत्र राति अपने से (आदत्ते ग्रहण होने पर यह तुग्रः है अर्थात् पुत्रैषणावान होकर (भुज्युं) भोगता है पूर्वार्जित कर्म फलको और यौति नाम क्रियमाण कर्म से मिलित होता है भुज्यु रूप आत्मा उसको उदमेघतुल्ये नाम संसार समुद्र में फैंक दिया है अश्विनि।

" योवै तत्काम्यसूत्रं विद्यात्तंचान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्"

(यो) जोकि यह (काम्य) भोग फल रूप (सूत्रं) सूत्रात्माको (विद्यात्) जानने से (चान्तर्यामिणम्) और अन्तर्यामी आत्मा को जानता है वह ब्रह्मज्ञानी है। यह श्रुति प्रसिद्ध सूत्रान्तर्यामी इन दोनों को आप दोनों आचार्य रूप से (नौभिः) तत्त्वमसि, आदि वाणियों से (आत्मन्वतीभिः) आत्म ही प्रतिपाद्य विषय हो जिसमें (ताभिः) उन्ही से (अन्तरिक्ष)

अवलम्बन रहित रूप मार्ग में अर्थात् हार्दाकाश में (फवन्ते) संचार करते हैं उन्ही से सगुण ब्रह्म अवलम्बनों से (अपोदकाभिः) उनत्ति रूप आर्द्र को करता है अर्थात् संगहित संग को करता है। यह अज्ञान रूप उदक को उसका विरोधियों से यह शषे पूर्ववत् है॥ अत्र कथा को अवलम्बन देवता स्तुति करते हैं तहां आलम्बनीभूत तुम्रादिपदार्थ रूप अनित्य वस्तुओंका संयोग से वेदका अपौरषेयत्व नष्ट न हो इस कारण से अनित्य वस्तु का वेद में ग्रहण नहीं है अतः नित्य वस्तु का ही ग्रहण है। यह देवताधिकरणमें जो अवान्तर का तात्पर्य होने से है उन सब देवताओं का हरेक कल्प में समान नाम रूप इन सबों का उत्पत्ति को स्वीकार करके जैसे व्रीहि आदि पदार्थों के समान प्रवाह अनादित्व कहा है। चमसाधिकरणमें इस प्रकार का कथा रूप से है जैसे ब्रह्मविद्या में मुख्य तात्पर्य यह निश्चित है।

वहां ही "अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णाम्"

इत्यादि मंत्र में अजा दिशब्दों का श्रोतार्थके परिग्रहमें मंत्रका अधिगतार्थ प्रमाणत्वसे अप्रमाण्य से वैयर्थ्य न होवे अर्थात् अजा शब्द का अर्थ ऐसा करना चाहिये

'न जायते' इति अजा

इसयोग से अर्थात् यौगिकरूढ होनेसे अजा मूल प्रकृति आदिका प्रतिपादकत्व को आशंक्य शंका करके जैसे किसी ने कहा कि

'मंडपम् भोजयेत्'

अर्थात् मंडपमें रहा हुआ मनुष्य को भोजन करावो यह रूढ शब्द है यह न कह करके कहा कि

जब मण्डप शब्द यज्ञमें देवल्हीपमें बनता है ये मण्डपकावाचक है तब वहाँ अजहल्लक्षणा है

मण्ड प्राब्द भात के माड़ का वाचक है।

'मंडम् पिवतीति मंडपम्'

अर्थात् मांड पिवने वाले को भोजन करावो यह यौगिक है। इसमें गौरव दोष है और मंडपस्थजनों को भोजन करावो इसमें लाघव है। अतः रूढि पूर्वक लक्षणासे यौगिक शब्द जो मंडपिवति यह दुर्बल होनेसे। इसीके समान अजा शब्द रूढ है। सांख्य कार अजा प्रकृति को स्वातन्त्र्य रूप से जगत्कारण मानते हैं वह अजा शब्द छान्दोग्यस्थ भी है सांख्यके मत में अजा शब्द कैसा है लोहित शुक्ल कृष्णाम। छांदो ग्यमें आया है रोहित आदि रूयों का दूसरे ठहोन प्रत्यभिज्ञा होने से परा भिमत दूसरे मत में प्रकृति ग्रहण में विशेष हेतु का अभावसे अर्थात् रोहित शब्द से लोहित अर्थात् तेज शुक्ल शब्द से जल कृष्ण शब्द से अन्न रूप भूत प्रकृति ही अजा के समान अजा है। यह अजा रूपसे यहां पर प्रतिपादित न करके यह सिद्धान्त किये हैं अर्थात् अजा शब्द ब्रह्मात्मिका प्रकृतिका ग्रहण है श्रुति में सांख्योक्त नहीं। एवं श्रीरामायण का उसका भूत जो मंत्रों का और अवान्तर तात्पर्य से कथापरत्व यहां तात्पर्यसे और विद्यापरत्व कहनेके लिये युक्त है॥ ननु यह शंकार्थ में है।

"सर्वे वेदा यत्पदमामनंति"

यह समस्त नामा जो है सो जिसको अर्थात् जिसमें प्रवेश होता है।

"देवानां नामधा एक एव;

इत्यादि श्रुतियों से देवों का जो नाम है वह एक नाम ही है अर्थात् एक नाम में समावेश होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परम तात्पर्य विषयीभूतश्रीरामजी कासर्वदेवतावाचक शब्दों से अभिधान युक्त है अवान्तर अर्थात् बीचका तात्पर्य में

मण्डप शब्द माण्ड़ को पीने वाले मनुष्य का वाचक है और मण्डप शब्द माड़ व का भी वाचक है माड़ व य

तो व्यवस्था का आवश्यक होनेसे अन्य दूसरा दैवत्य नाम देवतो का प्रति पादक मंत्र श्रीरामकथाको प्रकाश करने के लिये इष्ट नहीं है। अथ यदि हठसे तत्परत्वं नाम श्रीराम परत्व को वर्णन करते हैं तब एक शब्दकी अनेकार्थता होवेगी यह और अनिष्ट होगा। कहा जाता है कि जैसे एकही रेखा स्थान भेदसे एक दश शत सहस्त्र आदि कथन को प्राप्त होती है इसी प्रकार एक ही पद वाक्यके अथवा पदान्तर वाक्य के समान कथन होने से अनेकार्थका प्रत्यायक यतिज्ञान होता है, तबतक नाना अर्थत्व का शब्द का संभव नहीं हो सकता है अपितु किन्तु वृत्ति भेद ही, तथा हि वैसेही एक भी अमृत पदका।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते" स्थिताः

जो समस्त काम ज्ञानीके हृदयमें आश्रित हैं वे जब छूट जाते हैं तब मनुष्य अमृत शुद्ध होता है तब अत्र ब्रह्म इसी अवस्थामें ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। यहां पर मोक्ष कहा है

"अपाम सोममम्रृता अभूम'

सोमरस को पीकर हम सब अमर होगे। यहां पर देव भाव का कथन है।

"प्रजामनु प्रजयसेतदुते मर्त्यामृतम्'

पुत्र को तुम पुत्र रूपमें होते होते वह सब मर्त्य पुत्र अमृत होते हैं यहां पर सन्तान वाचि अमृत शब्द है पूर्वोक्ति में मोक्ष पर है दूसरे में अमर वाचि है अमृत पद तीन ठहिन ठिकाने तीन अर्थ

स्थिताः। ऐसा कहीं पाठ है।

यज्ञो वै विष्णुः। इति श्रुति के प्रमाण से यज्ञश ब्द विष्णु को वाच्य करै है।

कावाची है। अथवा जैसे

"यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः"

देवगण कर्मद्वारा कर्म को करते भये यह वाक्य को-

अबध्नन्पुरुषंपशुम्

पुरुष रूप पशुको वांधतेभये अर्थात् वकराको यह अव्यव-हित अतित मंत्रका अवयवसे जीव का सूक और देवता का आलोचनया बिचार करके परमेश्वर का और उपस्थित जीव ब्रह्म में प्रविलापनीयलत्य इस अर्थ में पर्यवस्पति मिलना देखा गया है वही।

"तं यज्ञं वर्हिषि प्रौक्षन्, मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च"

उस यज्ञ को वर्हिषि नाम यज्ञमें प्रोक्षन होता है। मुखात् प्रधान रूप से इन्द्र और अग्नि है इन दो वाक्यों से अन्वीय मान युक्त वर्हिःस्थेन यज्ञमें स्थित पशुसोम आदिसे इन्द्र अग्नि आदि देवगण यष्टव्या यज्ञ करने योग्य हैं। यह कहा जाता है उसी अग्नि मंथनीय ऋचाओंको परिधानीय धारण करने योग्य में विनियोग किया जाता है।

"यज्ञेनैवतद्देवा यज्ञमयजंत यदग्नि नाग्निमयजंत"

वह देवगण यज्ञसेही यज्ञको पूजन करते भये और जो अग्निना अर्थात् चेतन अग्नि की जड आव्हनीय अग्निको पूजते

देवगण। यज्ञसे विष्णु की पूजा किये।

भये, यह ब्राह्मण भाग मंत्रमें व्याख्यान अर्थ को कहते है। वहां पर आध्यात्मिक अर्थको मुख्य उपेयत्वात् प्राप्यत्व होनेसे आधिदैविककातो सामीप होने से अमुख्य है। तृतीय मंत्र संतान में अमृत के समान है ध्यान रूप यज्ञका अंग भूत कर्म रूप यज्ञोंका इन्द्र और अग्नियोंका यज्ञत्वको अति जघन्य नाम चंचल अथवा निन्दनीय होता है तथा इन्द्र आदि शब्दभी बलवता नाम बलवान होने से भी श्रीरामकेलिंगेन प्रमाण से उपहित युक्त है उसको यह।

"इन्द्रं सन्त मिन्द्र,,

इन्द्र होते हुए इन्द्र कहा जाता है। इदि परमैश्वर्ये धातुसे इन्द्र शब्दकी सिद्धि होती है। यह श्रुति स्मृति निर्दिष्ट मुख्य वृत्ति से स्वार्थ अपने अर्थ को कहती है। वही देवता लिंगके बोधित शब्द हैं अर्थात् शचीपति इन्द्र को कहती है वही लक्षणा वृत्ति से पुनः।

"ऐन्द्रया गार्हपत्य मुपतिष्टेत,,

इन्द्र प्रतिपादक ऋचासे गार्हपत्य अग्नि को उपतिष्टेत स्थित युक्त है वह श्रुति से गार्हपत्यके उपस्थान में विनियुक्त ऋचा में देखा गया है गौण वृत्तिसे गार्हपत्य को कहती है। और दूसरे ठहीन रूढ भी शब्द का लिंगवलात् अर्थात् प्रकरण से दूसरे अर्थ को कहती है जैसे।

"सर्वाणि हवा इमानि भूतान्याकाशा देवसमुत्पद्यन्तो,,

यह श्रुति से यह जाना गया कि सर्व भूत का उपादनत्वलिंग से भूताकाश पर भी है आकाश शब्द जगत्कारण को कहता है। तिसहेतु से आवान्तर पद के तात्पर्यविषय कथामें भीबलवत प्रमाण का उपहित जो अन्य दैवत्य भी मंत्र अर्थात् दूसरा मंत्र देवता का भीप्रतिपादक है वह भी श्रीरामजीकोही कहती हैं नहींतो अनेकार्थदोष है परिहृतत्वात् अर्थात् उपसंहार होनेसे । ननु । चमसाधिकरण न्यायसे अर्थात् चमसवद विशेषात् इस सूत्र से कर्म अविनियुक्त नाम निश्चय रहित अजापद मंत्रों में पठित अजा शब्द का किस अर्थ का आकांक्षामें पठित है यह नियम नहीं है कहो कि विद्या परत्वको हो । तुम्र आदि मंत्रों का तो कर्मों में विनियुक्त नाम निश्चित अर्थ है। परन्तु अजा पद को तो प्रमाण का अभाव होनेसे अनिश्चित हैं।

"सर्वेवेदा, ऋचो अक्षरे,,

यह दोनों श्रुतिओं का भी वेदऋचों का और कर्म परंपरासे भी जब अक्षरपरत्व सिद्धि के एक तुम्र आदि मंत्रका अर्थद्वय कल्पना में प्रमाण भावको नहीं भजते नाम स्वीकार होता है।

"यज्ञेन यज्ञम्,

यहां पर ही यह दूसरा वाक्य को समान कथन नहीं हो सकता है।

"इन्द्रो मायाभिः,,

इस के समान इसका विद्या प्रकरण में बारबार पाठ नहीं

हो सकता है जिससे उसके वशसे इसका भी वैयर्थ्य हो। वैसे होने पर इषेत्वादि मंत्रों का भी उस के कल्पना हो उससे और अत्यन्त श्रुति की पीड़ा होती और कर्म कांड का उच्छेद होने लगेगा तिस कारण से मंत्रों का श्रीरामयण का मूलत्व में संभव होने पर भी अध्यात्म परत्व नहीं योग हो सकता है यह देखाया गया है॥ यदि यह कहो तो न एक विषय में हो प्रतिपत्तृ नाम ज्ञाताके भेद से प्रतिपत्ति नाम ज्ञानका भेद देखने से। तथाहि जैसे कि एक रज्जु खंडको कोई सर्प यह है कोई यह दंड हैं कोई यह रज्जु है यह प्रत्यक्ष ज्ञानसे। और एक घट को कोई असत्से व्यवहार करते हैं अर्थात् बौद्ध। कोई अद्वैतवादी अनिर्वचनीय कहते हैं तर्कबल से यह ज्ञान देखा गया है तथा।

"यएषोऽक्षिणि पुरुषोदृश्यतएष आत्मेतिहोवा चैत दमृतमभयमेतद् ब्रह्म,,

जो यह पुरुष नेत्रों में देखा जाता हैं वह यह आत्मा है यह कहा गया, यह अमृत अभय यह ब्रह्म है। यह प्रजापति ब्रह्माजी के वाक्य से एकही आत्मा को देहादि विशिष्ट ही अमृतादि गुण भाक्त्वेन अर्थात् स्वीकार से विरोचन दैत्य ने जाना और वही आत्म ब्रह्म को इन्द्र देव तो उसेहो क्लेश रूप से अर्थात् नाश भावसे और देहत्रयातीत अर्थात् स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीर से अतीत पर वैसे आत्माको देखा यास्क ऋषिभी।

"बहुप्रजा निर्ऋ तिमाविवेश,,

इसका अर्थ बहुप्रजा अर्थात् दुःख को प्राप्त भये हैं यहपरिव्राजक लोग कहते हैं। वर्ष कर्म अर्थात् जलवृष्टि रूप कर्म है यह निरुककार कहते हैं यह एकही निऋति पद को द्विविध कहते हैं। वर्ष कर्म इसकी व्याख्या भूमि को प्राप्त हुए यह वहीं पर जानने योग्य है। उससे है कि प्रतिपत्ति भेदसे अर्थका भेद मंत्रोंका होता है। अत एव यास्क स्थालीपुलाक न्यायसे स्थाली पुलाक उसे कहते है जैसे अग्नि पर चढे हुए चावल में से एकही टोया जाता है और उसका ज्ञानभी हो जाता है कि सिद्ध हुआ अथवा नहीं। कोई मंत्रोंको अधिदेव और अध्यात्म परक व्याख्या न करके समस्त अचेतन अर्थात् पञ्चमहाभूत रूप देवताका भी अध्यात्मपरक व्याख्या न करने योग्य है यह आशय से कहा है। महाभाग्य से देवता का एक आत्मा बहुत प्रकार से स्तुति करते भये एक आत्मा का दूसरे देवगण प्रत्येक अंगको होते हुए भी और सत्व रज तमों का प्रकृतिसे ऋषिगण स्तुति को करते हैं। यह कहें कि प्रकृति सर्वनामसे इतरेतर जन्मानः अर्थात् परस्पर मिल करके जन्म धारण वाली होती है और इतरेतर प्रकृतयः परस्पर मिल कर प्रकृति कर्म को उत्पन्न करती है आत्म जन्मानः आत्मा का जन्म होता है आत्माहो उनसबोंका रथ होता है आत्माहो अश्व है आत्माही आयुध है आत्मा ही बाण है सब देवका देव है। यही कह करके भगवान् व्यासजी भी प्रतिपादन करते हैं आश्वमेधिका अध्यात्ममें।

"वृत्रेण पृथिवी व्याप्ता"

वृत्रासुर ने पृथिवी को व्याप्त किया यह आरम्भ करके।

"ततो वृत्रं शरीरस्थं जघान भरतर्षभ"

कृष्ण राग है अर्थ में है। शुक्लराग है यह प्रतिपक्ष को पञ्च-दश तिथि होते हैं वह तिथि सूर्य और चन्द्रमा इनदोनोंका सन्नि-कर्ष और विप्रकर्ष तारतम्यमें होते हैं, तहाँ सूर्य आत्मा है। चन्द्र षोडश कला है मनोरूपी अहम् नाम अहंकार अर्थ है, कला यहहै प्राण, श्रद्धा, खं, वायुः, ज्योतिः, आपः, भूः, इन्द्रियम्, मनः, अन्नम्, वीर्यम्, तपः, मंत्राः, कर्म, लोक, और नाम, यह षोडश कला कहा जाता है। और तहां नाममात्रावशिष्टं मनः मात्रा नाम शब्दपञ्चतन्मात्रा का अवशिष्ट नाम रहने वाला मन है। और सुसुप्ति अवस्था में प्रलयमें जब आत्मा में समस्त कलावों के साथ लीन होता है वह कला केवल तमोमयी अविद्या रूप रात्रि दर्शनाम अमावास्या है। तहां विवेक से जैसे जैसे कलावों का आत्माओं के पृथक् भाव होता है। तब बोध रूप चन्द्रमा बढ़ता है जो तु सत्त्वपुरुष नामप्रकृति और पुरुष का ज्ञान होता है तब प्रकृतिसे मुक्त होता है इसीका नाम अन्यथा ख्याति कहते हैं। वही सूर्य चन्द्र इनदोनोंका अत्यन्त विश्लेष नाम संयोग रूप अविद्या रूप पूर्णिमा है। ऋतस्य सत्यरूप कर्म का फलभूत संसाररूप चक्रको उसीसे विद्वानकी दृष्टिसे देखागयाहै, ऋचोंका साक्षात् अक्षर परत्वको अविद्वान् की दृष्टिसे तो परंपरा से यह सिद्ध होता है। वह यह संग्रह "एकैक में जैसे दर्पण में प्रासाद नाम महल बारंबार आन्तरके लक्षित अर्थात् दर्पन में अच्छि तरह से मकान देखने लगता है वैसे ही देवतान्तरों से समस्त लोक देवों में देखने जब लगता है। १। उससे समस्त प्रत्येक को विश्व का योनि कारन देवता होवे। परस्पर एक का एक योनि ही जैसे यास्क मुनि कहते हैं। २। बलवान श्रीराम लिंग अर्थात् प्रमाण अथवा चिन्ह में यत्किञ्चित् देवता अमत है। श्रीरामा-यण के अनुसार से व्याख्या करते हुए ही नहीं दूषण है। ३। विनियोगका अनुग अर्थात् विनियोग उसे कहते हैं कि जिस

५ ज्ञान इन्द्रिय हैं, कान आँख नाक जीभ के आगे
भाग में रहनेवाली रसना जो स्वाद मीठा का अ

मंत्रों से जिस देवता का विधान हो अनुग नाम अनुसार किया जाय, सायनाचार्यकृत भाष्य वेद को जो व्याख्यान किये हैं वह गौणवृत्तिसे किये हैं अर्थात् जिस देवता का प्रतिपादक है उसका वहांपर नहीं किये अतः गौण है। तत्त्वानुग नाम जिस देव का मंत्र है उसको वहीं पर लगा देना, ऐसा मैं वहीं मुख्यवृत्ति से किया हूँ। जैसे यास्क के समान ॥ ४ ॥ ननुश्री-रामायणीय कथा को कहीं भी शाखा में वृत्रासुर वध के समान नहीं दिखने में आता हैं अतः इसका श्रुति मूलत्व ही नहीं है यदि ऐसा कहा जाय तो जैसे अन्धा स्थाणु नाम ठुठा वृक्ष को नहीं देखता है तो क्या स्थाणु का अपराध है। इसी तरह से वेदार्थ का अनभिज्ञ तुम होने पर श्रीरामायण का अपराध नहीं है। ननु वेद भाष्य में भी श्रीरामायणी कथा का सूचक कहीं भी मंत्रों का नहीं मैं दिखता हूं यदि ऐसा कहा जाय तो। इस का दोष नहीं है। विनियोग के अनुसारिका कर्म में अव्युत्पादन अर्थ का भाष्य कारीय व्याख्यान की निगम निरुक्त के अनुसा-रीतात्विक यथार्थ व्याख्यान के अदूषक होनेसे। किंच हे आयु-ष्मन् तुम ने अल्प ही कहा अर्थात् बहुत कहना था। मंत्रार्थवादों से भी कर्म में रुचिके उत्पादनके लिये अनुपपन्न भी अर्थ किया जाता है जैसे—

"प्रजायाँ अमृतत्वम्"

प्रजा पुत्र अमृत है यह रुचि परक वाक्य है अर्थ पर नहीं और।

आत्म वपोत्खननम्

अर्थात् अपने वपा कलेजा को उत्खननम् फारकर दिये यह रुचिपरक है अर्थ पर नहीं क्योंकि अपने हाथ से कोई कैसे कलेजा निकाले गा वह तो मर ही जायगा अतः। और सुनो—

"प्रजामनुप्रजायसे तदुते मर्त्यामृतम्"

प्रजा पुत्र रूपमें पुत्र होते हो तुम्हारा मर्त्य पुत्र अमृत है। यह क्या रुचिपरक है अर्थ पर नहीं। यह वचन।

"प्रजापति रात्मनो वपा मुदखिदत्"

ब्रह्माजी अपने कलेजा को निकाल कर दिये। एवंच कर्म की स्तुतिके अर्थवादका अनुसार भाष्यकारीय व्याख्यान अमुख्य है अर्थात् यथार्थ नही। भारत में कहा है कि

"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
विभेत्यल्प श्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेत्"

इतिहास श्रीरामायण वा महाभारत अष्टादश पुराणों से वेद को उपबृंहयेत् बढावे। अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह मूर्ख मुझको ताडना न करे। यह वहांपर उपबृंहण नाम एकत्र मंत्र में ऋचा में सूक्त में देखा हुआ अर्थ का संक्षेप रूप नाना स्थान में विप्रकीर्ण फैलाया हुआ उसके अनुगुण अर्थों का उपसंहार से पुष्टि करे। वह और जिससे आम्नाय मात्र को नही सुना है उसने करने के लिये असमर्थ है। अतः उस अल्पश्रुत से वेदको भय होता है यह कहा। श्रीभगवान ने भी।

"यामिमां पुष्पितां वाचम्"

इत्यादि अर्थवादों का मोह जनकत्व को कहते हुए उसके

अनुसार व्याख्यान का अनादरणीयत्व को दिखाया मंत्रवर्ण भी कहता है।

"नीहारेण प्रावृता जल्प्या च"

कूहरा से ढक गया है अल्प प्रकाश और जल्पना से यह अल्प कथन से जल्पी तुच्छ अर्थ के प्रतिपादक वाणी है। उस वाणी से प्रावृत्ता कहा यह अज्ञान से अर्थवादों से और वंचित है। नन्वेवं भाष्यकारीय मर्यादा रहै स्थित परन्तु द्रव्य और देवतादि का प्रकाशन द्वारा विध्यर्थबाद वाक्यों को स्मरण कर बीता हुआ मंत्र से जाय मान जो कथा उसको कैसे सूच-कत्व उपपन्न हो सकता है यदि यह कहा जायतो सुतराम नाम है यह कहा जाता है। वैसेही समस्त मंत्रभी अध्यात्मिक अधि दैविक कथा को उपजीव्यैव उपजीवन करके ही है और कर्म सम्वन्धि अंग को स्तुति करते हुए विध्यर्थक वचनों को स्मरण कर बाते है यथा।

"यत्कृष्णो रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन्"

ततस्त्वामेकविंशतिधा संभरामि सुसंभृत

अर्थ जो कृष्ण नाम ब्रह्म रूप धारी आपप्रपञ्च बना करके स्थावर जंगम रूप को करके उसमें प्रवेश करके तहां पर स्थावर जंगमादि से आपका तादात्म्यापत्त्या नाम अभेद भाव से समि-द्ध रूप वृद्ध होते हो इस हेतु से आप को एकैस भेदको मैं धारण पोषण करता हूं।

श्रीकृष्णजीतो श्रीरामजीके शृङ्गार हैं ऐसा

दुदर्शनसंहितामें साफ ही लिखा है।

"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनु प्रविश्य सच्चि

त्यच्चाभवत्"

उसको (औगन्त को) बना करके उसमें पीछे से प्रवेश किये उसमें प्रवेश करके कारण कार्य भाव होते भये। यह ब्राह्मणोक्त कथाके प्रदर्शन पूर्वक समिधाये श्रीकृष्ण भाव को प्राप्त हुए। उन सर्वो (श्रीराम) का संभरण को स्मरण करवाता है यथावा (यथा)।

"यस्य रूपं विभ्रदिमामविन्दद्गुहां प्रविष्टां सरिट

स्य मध्ये तस्येदं विहतमाभरन्त"

जिस रूप से (विभ्रत्) प्रकाशित होते हुए (इमाम्) इस पृथिवीको समुद्र के मध्यमें एकान्त रूप गुहा में घुसा हुआ को (विन्दादत्) आप जान ते भये। (तस्य) उसको यह (विहतम्) मारे पश्चात् पृथिवी को धारण किये। यह मंत्र जिस बराह रूप धारी परमेश्वर का है। भूमि को समुद्र मध्य निगूढ स्थान में प्रवेश किया हुवा को आप प्राप्त किये उससे यह मृत्खड को उत्खातं नाम कार दिये और धारण किये हम सब यह वराहावतारकी कथा को प्रदर्शन पूर्वक बराह विहित को स्तुति करता हुआ उसके संभरणको स्मरण करवाता है। इसी प्रकार

"इषेत्वो र्जेत्वा" यह "शाखा माच्छिनत्ति"

यह विनियोगसे है शाखे भो अपने बनायी शाखान्त प्रवेश से और उसके साथ अभेद से युक्त परमेश्वर (त्वाम्) आपको

(इषे) अन्नकेलिये "अन्नं विराट" यह श्रुति से विराद् मात्र के लिये (ऊर्जे) रसके लिये। "रसो वैसः"

यह श्रुति के प्रमाण से परमानन्द अवाप्तिकी छेदनसे मैं (अवाप्नवानि) प्राप्त होऊं यह इससे ।

"ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनंहिंसीति

हे (स्वधिते) तिक्षणधार वाली ओषधि रूप कुशा इस बालक का रक्षा करो इसको नहीं मारो ।

"सृणोत ग्रावाणः,, पषाण सुनो

"लोमभ्यः स्वाहा,, चक्रमणाय स्वाहा

घूमने वाले के लिये स्वाहा इत्यादि अचेतनार्थं में संबंधसे चेतन प्रवेश उसके साथ तादात्म्यापत्ति रूप से व्याख्यान करने के योग्य है । एवंहि व्याख्यान करने में ।

"पुरुष एवेदं सर्वम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, इमानि सर्वाणि यमाविशन्ति, ऋचो अक्षरेपरमे व्योमन्"

इत्यादि ऋग मंत्र परम व्योम रूप आकाश पद बोधित ब्रह्म अक्षरमें यह समस्त वाणी नाम जिसमें प्रवेश होती है। और सब का आत्ममात्रत्व को अर्थात् समस्त का प्रेरक अन्तर्यामी शास्ता है और निखिल शब्दोंका प्रतिपादक को देखाते

हुए समंजस नाम युक्त होता है। तहां जो कर्मठ सम्यक् संपूर्ण कर्म को ही प्रशंसा करते हैं वह अल्प श्रुत है। जो वराह भगवानके उपासक हैं वह मध्यम हैं। जो श्री ■■ जी के उपासक हैं तत्त्वज्ञ और उत्तम है। कर्म उपासना और कर्म काण्डों का उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होने से जिसने संभरणस्य संपूर्ण महत्त्व को जानता है वह अर्थ संभरण से महान रहित न हो सकता है अर्थात् महान होगा। यह विद्वानों का हृदय ग्राह्य है। वहीं पर भाष्य कारीय व्याख्या को कहा है कि हे शाखे तुमको लौकिक अन्नरस की प्राप्ति के लिये मैं काटता हूँ यह क्रियमाण छेदन प्रशंसार्थ है अर्थात् अर्थपरक वाक्य है ऐसे यह शाखा छेदन को जिससे यहां पर रस को प्राप्त करते हैं सो यह अर्थ कर्मकाण्डयों का रुचिपरक वाक्य है पूर्वोक्त अर्थ का प्रत्यक्ष श्रुति का शिखर वेदान्त मूल का यह विद्वानों का हृदय सं ग्राह्य है अतः इसका वाध नहीं है। किंच बिनियोग मात्रसे स्वार्थ को त्यागकर केवल कर्म परत्व मंत्र का कहने के लिये समर्थ नहीं हो सकते हो। तथाहि—

"इदं विष्णु विंचक्रमे त्रेधा निदधे पदं।

समूढ ह मस्य पांसुरे"

यह मंत्र वा नियम लोप अर्थात् कोई ऐसा याग हैं कि जिसमें मौन होकर याग होता है परन्तु बीच ही में मौनव्रत छूट जाय तो इस मंत्र से प्रायश्चित किया जावे अर्थात् "इदमिति" इस मंत्र को जपे और भी कहा है कि सर्व प्रायश्चितार्थ करने के लिये घृत को आहुति देते हुए "इदमिति" इसी मंत्र को जप करे। और वैष्णवोपांसुयाजस्य अर्थात् श्री विष्णु

संबन्धि उपांसु नाम का याग पुरोनुवाक्य अर्थात् 'इदमिति" यह मंत्र से विनियोग करे अर्थात प्रारम्भ करे। नचात्र अर्थात् यहां पर उसके अनुकूल कुच्छ चिन्ह नहीं देखा जाता है जिस विनियोग भेद से व्याख्यान का भेद की यहां पर कल्पना करने के लिये शक्य नहीं हो सकता है। किन्तु केवल श्रीविष्णु देव का महात्म्य को कहा है। यह तीनों लोक को तीन पादसे अति क्रमण किये यह कहा है न तच्चि त्रं क्या आश्चर्य हैं किन्तु कुछ भी नही जिससे उनका पांसु मतिपदे नाम धूली वाले श्रीचरणों में पांसुरूप से सम्यक् आरूढ अर्थात् धूली लगी है यह कहा। और इन सबों का व्याख्यान कैसा हैं जैसे "इषे त्वा" इसके समान विनियोग मात्र को जाननेवाले विद्वानों ने पुष्कर बराह और वामन आदि अवतार प्रगट हुए यह सब कथा इतिहास पुराणादि को मूर्ख नहीं जानता है उसके लिये नही शक्य हो सकता है। द्वितीये

"आज्यैस्तुवते' पृष्टैः स्तुवते प्रउंग शंसतिनिष्कैवल्यं शंसति"

इत्यादि में स्तुति और शस्त्रों का तो संस्कार कहा है

"याज्यावद्देवताभिधानत्वात्"

इस यह सूत्र से जैसे याजा देवता का अभिधान रूपसे दृष्टि के द्वारा इष्ट देवता का स्मारक रूप मे प्रधान याग संस्कारके अर्थ कहा है। एवं स्तुति और शस्त्रभी मंत्रों का दूसरा सिद्धि देखी हुई अर्थ से लंघनीयत्व होने से यह "प्रापय्यार्थ' नाम प्राप्त करवाय करके भी अथवा श्रुति संयोग से अस्त्र करण में

"स्तौति शंसती क्रियोत्पत्तिं विद्ध्याताम्'

यह सूत्रसे स्तुति की श्रुति प्रकरणोंसे प्रतीयमान साध्य-त्वको उल्लंघन करके नही सुने संस्कार साधन का कल्पना श्रयोगसे याज्या यास्तु नाम याग्य का नाम अर्थात् मंत्र गायन करता हुआ घृत अग्नि में छोड़े प्रकरण आदि से याग के अंग-त्वसिद्धि के देखा हुआ अर्थत्व औचित्यसे उसके आचरण याग से प्रधानकर्म में स्तुति और शस्त्र पूर्वक यह स्तुत और शस्त्रोंके अधिकरण में स्तोत्र और शस्त्रों का स्तुति के एक प्रयोजन के साधित होने से उसके समान इतर का भी वेद भाग का देवता स्तुति प्राधान्यसे ही प्रयोगमें मिला हुआ अर्थका स्मारक भी युक्त है और एक रूप के लाभ से उन जड़ कर्म काण्डियों का कर्म में जैसे कथंचित् किसी तरह से रुचि की उत्पत्ती के लिये भाष्य कार मत में समर्थन किये हैं और वेद में श्रीराम कथा अदर्शन होने पर भी निगमनिरुक्त और उपवृंहण आदि से सिद्ध की या अर्थात् इतिहास और पुराणादिके उनका अपलाप कथन का अयोग से अव्युत्पन्न नाम अनभिज्ञ से अग्राह्य होने पर भी व्युत्पन्न विज्ञसे ग्रहण योग्य से सिद्ध श्री रामायण के श्रुति मूलकत्व को इस लिये तत् श्रुतिका मूल जो वेदमंत्रों में भी श्रीरामायण में इसके समान कथा भाग जो प्रत्यक्ष वृत्ति से प्राप्त होता है और अध्यात्म भाग जो परोक्ष वृत्ति से यह जाना जाता है भाष्य कारीय व्याख्यान के साथ मेरा व्या-ख्यान एक एक मंत्र का तीन तरह से व्याख्यान करते है तीन यह है अध्यात्म आधि दैवत और सायन भाष्य ये तीन हैं तत्र।

"कं नश्चित्र मिषण्यसि' इत्यादि षट् ऋचा है 'इषुर्नधन्वन्' इत्यादि चालिस और सात मंत्र है 'तां सुतेकीर्तिम्, इत्यादि एकैव मंत्र है। 'पूर्वापरंचरतः' इत्यादि अठा इस मंत्र है यह सब मन्त्र इसी तरह से आदि मंत्र जानना चाहिये इससे पर सहस्र संख्या वाले मंत्र है प्रघट्ट का नाम बोधक है श्रीराम कथा के प्रकाशक है। उर्वशी पुरुरवा के संबाद की समान है।

"हये जाये मनसा"

यह अठारह ऋचा वाले सूक्त में उर्वशी पुरुरव नइ दोनों का संवाद रूप कथा है जैसे और "ओचित्सखा यम"

यह चौदह ऋचा वाले सूक्तमें यमराज और उनकी वहन यमी इन दोनों का संवाद रूप है इनके समान तहां श्रीराम कथा वेद में भरा पूरा है।

"कं नश्चित्र मिषण्यसि चिकित्वान

यह बारह ऋचा और सूक्त का कहा हैं। विखनसः नाम ब्रह्माजी का पुत्र बप्र नाम के ऋषि हुए इस चानु कान्तं नाम उपक्रम को लेकर के।

"कं नो वभ्री वैखा नस"

यह विखनाः श्री ब्रह्माजी।

"विखन सार्थितो विश्वगुप्तये,,

यह भागवतमें गोपियों ने श्री भगवानजी से कहा है कि हे

व अस्या गोत्रापत्यं पुमान् वाल्मीकः

प्रभो विखन ब्रह्माजी संसार के रक्षा के लिये सार्थित अर्थात् आप श्री को प्रार्थना किये है। यह देखा गया है और दूसरा पद वम्री पदसे वम्रीयोंने गुहामें अनुवृत्तं नाम रक्षाके लिये वम्री नाम वल्मीक यथा नाम बना कर यह चिन्ह से जाना जाता है कि वल्मीककारी कोई जंतु विशेष नाम का है। उनव म्रियों ने वल्मीक के गर्भ में स्थित स्थापित होने से मुनि वाल्मीकि नाम प्रसिद्ध हुए वही वम्र नाम से भी कहे जाते है जैसे वल्मी के अपत्यं पुमान् वाल्मी कि:शब्द से भी वम्रपद होता है जैसे वस्या गोत्रापत्यं पुमान वम्र यह पद होता है। श्रीवामीकि ऋषि ब्रह्म पुत्र श्रीरामायण के कर्ता है यह पुराणां तर प्रसिद्ध है।

"वाल्मीकिरभवत् ब्रह्मावाणी वाक्तत्स्वरूपिणी।
चकार रामचरितं पावनं चरितव्रतः

अर्थ स्कन्द पुराण में शिवजी पार्वती जी से कहते है श्री ब्रह्माजी ऋषि वाल्मीकि जी होते भये श्री ब्रह्मा जी की वाणी वाल्मीकि जी के वाक् रूप में प्रकट हुई॥

यह कं न यह सूक्त का श्रीरामायण के एक ऋषि सिद्ध हुए इन दोनों का देवता तो इन्द्र श्रीराम शब्दों से निदिष्ट परमेश्वर एकही है॥

॥ पूर्वार्द्धः समाप्तिमगात् ॥

जैसे श्रीरामायण का पहला अध्याय मूल रामायण में प्रश्न पूर्वक थोड़ा सा श्रीराम कथा का वर्णन है। वैसे ही पांच ऋचाओं में भी श्रीराम कथा का संक्षिप्त है। इन दोनों का

वाल्मीकिरभवत् ब्रह्मा वाणी वाकतत् स्वरूपिणी॥

मूलि मूल भाव अर्थात् कार्य कारण भाव सम्बन्ध है कारण पक्ष मंत्र है कार्य समस्त महर्षि रचित श्रीरामायण है जैसे हेतु मद्भावात् जानना चाहिए। आगे लिख करके दिखाते हैं। **कंनः।** इस मंत्र में अ॰ यहां पर वम्र नाम ऋषि वाल्मीकिजी अपने में गुरुत्व और शिष्यत्व भाव आरोपित करके प्रश्न और उत्तर रूप से पूछते हुवे गुरू उत्तर मुखसे अर्थात् व्याज मुखसे श्रीराम की प्रशंसा करते हैं॥ हे पूज्यापाद आप

॥कंनश्चित्र मिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै॥ कत्तस्य दातुशवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत ॥ १ ॥

(चिकित्वान्) स्तुति करने योग्य पुरुष को जानते हुवे (कं) अलौकिक कवि त्वादि गुणों से युक्त (वावृधध्यै) बधाइ करने के लिये पराक्रमादि गुणों से युक्त हो और स्तुति के योग्य हो हम सबोंके शुभाशुभ कर्मों में। (इषण्यसि) योजना कराते हैं। (चित्रं) आश्लाघ्य गुण वाले (पृथुग्मानं) संख्या रहित अहंकारियों को मारने वाले और तेज बल ऐश्वर्यसे महाज्ञानी इत्यादि गुण वाले हो और ब्रह्म शिवादि देवों को भी नियम में चलाने वाले हो निःसीम धन वाला हो (वाश्रं) सबके पूजनीय हो ऐसे (तस्य) उस पुरुष संबन्धिके (शवसः) बल का (व्युष्टौ) हम से प्रकाश होने पर उससे (कत्) क्या यशरूपि दान प्राप्त होगा प्रसंशा करते हुवे बह दिव्य गुण शालि पुरुष हम सबोंको क्या फल देगा ऐसे होने पर कौन स्तुत्य है अर्थात् कौन प्रसंशनीय है और स्तुति का फल क्या हैं ऐसे पूछते

पर ॥ पहला रोचनार्थ फल दिखाने है अर्थात् किसी ने कहाकि तुम को पाञ्च रूपया दुंगा अमुक कार्य करो ऐसे वाक्य कोरोचनार्थ फल कहते है (तद्वदिति) महा भारतान्तरगत अश्वमेधपर्व में लिखा है कि । अपूर्व शक्ति शालि वज्रसे बड़ा लम्बा चौड़ा शरीर धारी वृत्रा सुरको एक सौ अश्वमेध यज्ञकारी सुरेश ने मारा ऐसा हम सबों ने सूना है । इस वाक्य में इन्द्र बज्र वृत्र ये तीन पदों से क्याग्राह्य है । आत्मा का मोहके उसके हटाने के लिये विवेक इन शब्दों से कहा जाता है । इन पूर्वोक्त कथित होने से निखिल वेदों का कथन हो चुका है । इससे यह ज्ञात हुआकि स्तुति करने वाला का बज्र रूप ज्ञान को (तनत्) पतला करते हुवे अर्थात् सूक्ष्म करते हुवे इसपदमें तनन् न हुआ क्यों कि वैदिक प्रयोग होने से । इससे यह निकला कि सूक्ष्म अर्थको अलग कर देता है । [वृत्रतुरं) अपना अज्ञानको नाश करके तृप्त कर देता है । स्तुति से प्रसन्न करने वाले को मैं विवेक देऊं । जिस ज्ञान से अज्ञान नाश होता है अनर्थ कीनि बृत्ति होती है और परम सुख प्राप्त होता है जैसे श्रीराम स्मरण से श्रीरामस्व रूप होता है यही विषय प्रयोजन है ॥१॥

सहिश्रुताविद्युता बेति सामपृथुं योनि मसुरत्वा ससाद ॥ ससनी लेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्यमायाः ॥ २ ॥

अथ प्रश्न करने के बाद अब प्रसंशनीय पुरुष के स्वरुपको दिखाते है (सः) शब्द से घन श्याम पुरुष श्रीराम ही लिये जाते है क्योंकि समस्त ऋषि प्रणित रामायण में श्रीराम चरित्र सम्बन्धका निश्चय होने से (हि) प्रसस्त प्रत्यगात्मा

होने से अर्थात् निखिल जीवाविष्ट होने से (द्युत) अपने अचिन्त्य तेज शक्ति से विद्यमान हैं विद्युता) उनविद्युत स्वरूपा अलग शरीरधारिणी जनकजा जी के साथ सदा विद्यमान ही रहते हैं ॥ (साम) समरवसाम संसार सम्बन्धि समस्त दोषों से रहित हैं (येति) श्रीजनकजा के साथ देश देशान्तर को जाते है। (ऋभ्या सह गयम् आगात्) इस मन्त्र में से ऋभ्या पद लेके आने से यह अर्थ होता हैं कि (ऋभ्या देवी श्रीसीता जी के गृहको आए तहां पर आकर (पृथुं) पृथ्वी (यांनिम) जाया श्रीसीता जी का स्वीकार किया है। एदोनों प्रमाणसे (आसुरत्वा) आसुर सम्बन्धि जो चौर्य धर्म से (आम्सादः) अर्थात् असुर रावण नाम का चुरा करके अपने गृहमें लेआया। श्रीहनुमानादि बानरों सहित श्रीराम (सनीलभिः) एक स्थान हैं जिन दोनोंका अर्थात् हनु मदादि वानर और श्रीरामये दोनों का वासस्थानहैं साकेत लोक "अन्नं मु षायन" से अन्नपदको अध्याहार करने पर (अन्नं) अन्नरूपा पृथिवी रूपा श्रीसीताजी का बोधक है। श्रीरामजीकी धर्म पत्नीको रावण हरण किया और युद्ध में नागपाशबन्धादि को विशेष रूप से सहन किया उस रावण की सब माया के साथ युद्ध प्रसंग में नाश कर दिये। तहां यह हेतु हैं क्योंकि माया ने (ऋते) नित्य अपरि वर्तनीय श्रीराम भद्र जी स्वरूपमें नहीं असर किया यह शेष हैं अर्थात् महामहिम्न होने से। जो माया के वस वर्ति रहता है उसी को माया बाध करती है। निर्माय श्रीहरि को नही करती है। इसका व्यवस्था कैसे हो सकता हैं (सप्तथस्य) सप्तमस्य अर्थात् सात हो सम्बन्ध जिसका वह कैसे (भ्रातु र्भाग हर्तुः) यह रावण का विशेषण हैं अर्थात् भ्राता जो श्रीराम उनका जो भाग धर्म पत्नी उसको चोराने वाला इहां पर अवतारपरक

होने से श्रीराम रावण का भाई है जैसे कश्यपका पुत्र बावन भगवान् विष्णु पुत्र है तैसे ही विश्रवाका पुत्र रावण है यह संबंध से। इस का खुलासा अर्थ यह हैं मरीचि और पुलस्त्य दोनों सहोदर भाई है तृतीयपद ब्रह्मा है क्योंकि पुलस्त्य और मरीचि केबीचमें व्यवधान होने से ब्रह्मा तृतीय पद हैं। ऊपर से गिनो चाहें नीचेसे गिनो बीचमें ब्रह्मा ही आते है। जैसे मरीचि कश्यप विष्णु बावन और पुलस्त्य विश्रवा रावण मारीचि और पुलस्त्य वा पुत्र कश्यप और विश्रवा ये दोनों मिल के पांच हुए। कश्यप और विश्रवा का पुत्र विष्णु और रावण ये दोनों मिलकर सात हुए इस प्रकार होने से मंत्र का अर्थ अधि लोक हुआ और यही अधि दैविकभी अर्थ हो सकता है। २॥

सवाजं यातापदुष्पदायन्स्वर्षातापरिषदत्सनिष्यन ॥ अनर्वायच्छत दुरस्य वेदोघन्निश्रदेवां अभिवर्पसाभूत॥ ३ ॥

अधि लोक अर्थ का प्रति पादन करके अब अध्यात्म संबंध अर्थात् देह संबन्धि कहा जाता है (स) वह श्रीराम भद्र कैसे हैं नाश हो गया हैं समस्त माया जिससे अर्थात् अविद्यादि रहित (अनर्वा) अश्व युक्त वाहनों से हीन है (वाजं) युद्धको (याता) प्राप्त हुए। फिर वह कैसे है (अपदुष्य दायन्) एकत्र नवासने हीन है। जिस कारणसे कंटक जल कीचड़ आदि को लांघ गए है यह सेतु का विशेषण है (अप दुष्यदा) पुल रूप मार्ग से लंका को जाते हुये (स्वर्षात्) इन्द्रादि लोकों का अलग अलग करने वाला विष्णु देव है (शत दुरस्य) एक सौ द्वार है जिसका यह रावण का विशेषण है कैसे मस्तक में सात प्राण अर्थात् सात छिद्र है दो नेत्र दो कान दो नाक एक मुख दो

नीच शिश्न गुदा और नाभि ये दश हुए रावण के दश मस्तक थे अतः सौ हुआ नाभि द्वार कैसे हुआ नाभि स्थान में भी छिद्र है क्योंकि इससे भी रसागमनइष्ट होने से मुखकी संख्या सौ हुआ नाभि द्वार छीपा हुआ हैं ऐसा जाना जाता है (वेदो) रावण का लंका रूपही जिसका धन है (सनिष्यन) रावण अपने भाई विभीषण के लिये विभाग कर्ता हुआ (परिवदत्) वह कैसा है अपने पुत्र पौत्र भाई से घिरा हुआ बैठा है फिर कैसा है (शिश्नदेवान्) विषय भोगादि में परमा सक्त है ऐसे रावण को (घ्नन्) नाश किया (वर्पसा) अपने अचिन्त्य शक्ति से (अभ्य भूत्) परास्त किया। सेतु मार्ग से लंका को जा करके स्वधर्म पत्नी को चुराने वाले रावण को मार कर अपने अनुज श्री लक्ष्मणादि सखा दास से घिरे हुए विराजे है और शत्रुघ्न उसके भाई को समर्पित कर दिया ॥ ३ ॥

स यह्वोऽवनी गोष्वर्वा जुहोति प्रधान्यासु सस्त्रिः ॥ अपादो यत्र युज्यासोऽरथाद्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ४ ॥

तीसरे मंत्र में अपदुष्यदायन् पदको विस्तार पूर्वक अर्थ किया जाता है (स) अचिन्त्य श्रीराम जिस स्थान पर (घृतं) क्षरण शील होने से घृत कहा जाता है वाः जलमें (द्रोण्य श्वासः) द्रोणि नाम नावही हैं अश्वकी तरह गति हो जिसका साधन वह द्रोण्य श्वास कह लाता हैं वैसे होने पर मार्ग से (ईरते) चलते है (यत्र) जहां पर जाकर (युज्यास) सखा भाई रूप वानर प्राप्त हुए (अपाद) चरण से चलने का अभाव होने से अर्थात् मालूम पड़ता हैं कि इन सबों का पाद ही नही है

(अरथा) वाहन से रहित है। वहां पर भी समुद्रकी जगह पर (दद्याः) बड़ा लंवाचौड़ा पृथिवी की (सस्त्रिः) फैलाव है अर्थात् मालूम पड़ता है कि दूसरा भूमि प्रदेश विस्तीर्ण है ।

"अद्रि गमहन्"इस सूत्र से किन्प्रत्यय होकर लिट् भाव अर्थात् सृके द्वित हो गया ससृ रूप वना तव कन्मात्र के लोप हुआ ॥ जल में सेतु करके भूमि बना कर चले (प्रधन्यासु) युद्ध योग्य भूमि बना कर आते हुए (आजुहोति) अयोध्या में आ करके अत्यन्त दान होमा दिक करते हैं (अवनी) भूमि का अन्वय (सस्त्रि) अर्थात् पृथिवी का विस्तार करके दश योजन विस्तार वाला सेतुथा,और शतयोजन लंवा था ऐसा करके अपनी सेना सहित सेतु पर चले ॥ ४ ॥

सरुद्भिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गय मारे अवद्य आगात ॥ वभ्रस्यमन्ये मिथुनौ विवव्री अन्नमभीत्य रोदयन्मुषायन् ॥ ५ ॥

वह इन्द्रिय जन्य ज्ञानका अविषय श्रीरामजोहैं सो हनुमदादि परिजनों के साथ (ऋभ्वा) नित्य अपरि वर्तनीय श्रीराम भाषण पूर्वक प्रकाशसे देवी श्रीजनकजा जी के साथ अपने स्थान को आये वह कैसे हैं (आरेअवद्य) आरे का अर्थ हैं दूर अवद्य का अर्थ है निरस्तदोष क्यों कि श्रीजनकजा जी के छाया रूप श्रीजनकजा को असुर रावण हर लिया था फिर श्रीप्रभु को प्राप्त हुईथी उनके सतित्व प्रगट करने के लिये सब देव महर्षियों के सामने परीक्षोत्तीर्ण हुई फिर क्या करके अपने गृहको आए (अशस्त वारा हित्वा) अयोध्या में आने पर अनेक

जनताओं ने दुर्वाद किये सुनकर प्रभुने अयोध्या रूप गृह से छोड़वा कर फिर लखन लाल जी के साथ श्री जी को महर्षि बाल्मीकि जी के आश्रम पर छोड़ आए। यह सब चर्चा रामायणोत्तरकांड में रचित है। बाल्मीक जी के प्रधान शिष्य दो हुए उनका नाम कुशलव था (विवृती) विस्तार अर्थात् उन दोनों को स्वरचित श्रीराम यशको पढ़ा करके पूर्ण किये पश्चात् वह दोनों ने चतुर्दश भुवनों में विस्तार किए। ऐसा मैं (मन्ये) जानता हूँ यह वाक्य मंत्र द्रष्टाके उक्ति हैं तहां पर भविष्य वाणी को कहा (अन्नम) अन्न रूप पृथिवी पृथिवी रूप श्री प्रति बिम्ब रूप जनकजा जी को रावण ने चुराया। अन्नशब्द का अर्थ पृथिवी तथा पृथिवी से जाय मान श्रीजानकी जी है यह श्रुति गमक है (अभीत्य) देखा गया है पास में आकर रोदन कर वाया अभी त्यका अर्थ है पास रावण के स्पश रूप निमित्त के अपवादके हटा ने के लिये श्रीरामजी ने श्रीजनकजा को त्यागा था अत श्रीजनक जा रोदन करती थी॥ ४॥

वह यहां पर पञ्चम मंत्र में ऋत्वा ऋत्वा का अर्थ श्रीजीके साथ गयम् का अर्थ अपने स्थान को आए। उप संहार का अर्थ समाप्ति। दूसरे मंत्र में आया हुआ पद यह हैं (विद्युता सब वेन) यहां से प्रारम्भ हुआ है। पञ्चम मंत्र में (अन्नं मुषायन्) पद से उप संहार हुआ है। (योनिमासस्साद) यह दूसरा मंत्र का वाक्य हैं इससे उपक्रम किया गया है(आरेअवद्य यह पद पञ्चम मन्त्र में आया हैं इससे उप संहार किया गया है। क्योंकि असुर स्पर्शनिमित्त होने से श्रीजीके शरीर की शुद्धि की गई थी अर्थात् अपने अनुकूल प्रभु किए। क्योंकि सूर्य वंश के स्त्रियां परम पवित्र ही होती थी अतः। ऐसे होने पर ही उपक्रम और उप संहार यह देखने में दो वाक्य प्रतीत होते हैं

परन्तु ऐक्य वाक्यता वशात् परम पुरुष श्रीरामजी का प्रति
पादक है दो नहीं क्योंकि वही प्रधान विषय है और उसी को
विषय में प्रश्न और उत्तर हैं। प्रथम मंत्र जो चारहैं वह पञ्चम
मन्त्र में गतार्थ हैं अर्थात् इस पञ्चम मन्त्र में संक्षेप से समस्त
श्रीरामायण का अर्थ भरापूरा है। वही ज्ञानी जान सकता है
कि जो वाक्य का अर्थ मर्यादा को जानता है दूसरा नहीं ॥ ५ ॥
ऐसा कथन होने पर मंत्र परोक्ष प्रत्यक्ष वृत्ति से कह रहा हैं
क्योंकि इस में श्रीराम कथा प्रसंग हें और अप्रत्यक्ष वृत्ति (ज्ञान)
से विद्या भी प्रतिपादित है जैसे राम रक्षास्थराघवादि पदों
के लिये है उसको दिखाते हैं। स्थालीपुलाकन्यायसे इस अनु-
मान से यह जाना गया कि समस्त वेद आधि दैविक आधि
भौतिक और अध्यात्म इन तीन विषय को ही कथन करता हैं।
इसी अर्थको प्रथम मंत्र मुमुक्षु जनों से परम पुमान् पुरुष को ही
स्तुति करने योग्य हैं यह कहा गया। उस पुरुष के अध्यारोप
पूर्व दो मंत्रों से उसके स्वरूप को दिखाते हैं (सहि) यह
पद चतुर्थ मंत्र में हैं (स) वह श्रीराम स्तुति योग्य है। (द्युता)
यह पद दूसरे मन्त्र में कथन हैं इसका अर्थ स्वस्वरूप से दीद
प्यमान है अर्थात् सर्वोत्तम ज्ञान से युक्त हैं इसी मत्र में (विद्युता
पद हैं विपरीत प्रकाश अर्थात् अविद्यो से युक्त और इसी मंत्र
में (सहसाम) पदसे अपने शरीर भूत जो प्रकृति हैं उसमें
समस्त जगत्को बनाए और बना करके उसमें जीवको प्रवेश
कराके अपने स्वयं अन्तर्यामी हो कर प्रवेश किये। सृष्टि दो
तरह की होती हैं एक समष्टि अर्थात् नाम रूप विभाग रहित
दूसरी व्यष्टि अर्थात् नाम रूप विभाग किया जा सके इन दोनों
में श्रीराम का प्रवेश सार्थ कही हैं। यहां पर साम शब्द से

क्या गहा गया "ऋकसामाख्य" इस बचन में ऋग् मंत्र वह कैसा हैं कि साम गायन नाम से कथन हैं (सा) एव नाम अर्थात् ऋच् नाम से होता भया (अम) नाम साम हैं इन दोनों पदोंके अवयक को कह करके प्रति पादन हैं यहा न दूसरा अर्थ का ग्रहण हैं (सा) और (अम) मिलकर साम हुआ (तत्पद) से साम का सामत्व है अर्थात् ब्रह्म श्रीराम का बोधक हैं ऐसे होने पर ही निर्वचन का श्रवण होने से अर्थात् निरुक्ति निश्चयात्मक जाना गया। और ऋक्साम शब्द से यह ज्ञात हुआ कि अधि दैविक और अध्यात्मिक प्रपञ्च रूप सृष्ट को ही कहता है यही ऋचू अग्नि है साम वाकू है ऋचू प्राण है प्राण साम है। इत्यादि श्रुति से ज्ञान हुआ। ऐसे होने पर यह फल निकला कि जीव भूतात्मक शरीर में प्रवेश कराके पीछे से अणीयान् रूप हो करके प्रवेश करके मैं नाम रूप का धारण करूं। जीव के सहित नाम रूप को करने वाला ईश्वर का प्रवेश जाना जाता हैं। इससे यह फल निकलाकि तेज जल पृथिवी रूप प्रपञ्चकी प्राप्ति है। वैसे दूसरे मंत्र में (पृथु) पद हैं यहां पर क्या अर्थ है कारण अपेक्षा सेस्थूल हैं और योनि भी पद हैं इसका अर्थ प्रवेश स्थान शरीर है (इन्द्रजीव शरीर में निवास किया। इस मंत्र के स्वीकार से यहां पर योनि नाम प्रवेश स्थान का कथन है। प्राण में जो रमण करने असुर कहा जाता हैं अर्थात् आत्मही देह हैं अथवा देहही आत्मा हैं ऐसे ज्ञान वाले होने से ही असुर म असुरत्वधर्म है। यह कथन विरोचनादि दैत्यों का कथन है। द्वितीय मत्र में (आस-साद) पद हैं इसका अर्थ प्राप्तवान् हुआ अज्ञानी जीवों के देह में शुभाशुभ कर्मानुसार शरीर में प्रवेश होता हैं और प्रवेश होकर पञ्च भौतिक शरीर रूप ही हो जाता है। और वैसे ही

जीव में ब्रह्म प्रवेश करके सत् असत् होता हुआ अर्थात् नाम रूप जब नही रहता तब असत् रूप से कथन है। जब नाम रूप रहता है तब सत् रूप से कथन हैं। ए दो विभाग हैं। मूर्त नाम रूप अमूर्त नाम रूप रहित होता हुआ। इसी लिये ही अज्ञानी जीव प्रेय वस्तु को ही स्वीकार करता हैं। भक्ति विषय को नहीं। इस हेतु से जीव का बद्धत्व हुआ अर्थात् अनात्म विषयक ग्रहण से वारंबार चौराशी लक्षयोनियों को भोगता फीरता है। यद्यपि श्रीप्रभु जीवमें प्रविष्ट होने पर भी तद्गत दोषों से रहित ही हैं। द्वितीय मंत्र पठित (ससनीलेभि) पाठ है शुद्धसत्वो पाधि ईश्वर जो हैं सो ईश्वरका समान घर हैं अर्थात शरीर प्रविष्ट जीव जीव प्रविष्ट ईश्वर इस हेतु से दोनों शरीर रूप गृहमें वास करते है। ईश्वरका वास कैसा हैं अति शय धर्म ज्ञान वैराग्य सात्विक गुण से जीव के साथ ईश्वरका रहना है। जीवका रहना कैसा हैं माया के संबन्धमे अर्थात् अज्ञान सहित देहको आत्म भावसे मानता हुआ और समस्त दुखों का सहन कर्ता हुआ हैं तो भी उन दुखों से अभिभूत नाम दुखित नही मानता है (तान्) उन दुखों को तिरस्कार कर देता हैं और असंग भाव उदासीन भाव होकर के साक्षि रूप से रहता है। यहाँ पर हेतु दिखात हैं। द्वितीय मंत्र में (ऋतेन) यह दो पद आये हैं इन का अर्थ हैं कि अबाधितानंद स्वरूप में माया नही अर्थात् शुद्ध जीव में माया नहीं हैं यही विशेष धर्म है। दितीय मंत्र में यह पद आया हैं। (सप्त थस्य) और (भ्रातुः) भी पद हैं इस का व्याख्या क्या हुआ भ्रातु पद से यह हुआ कि इतने को भी कांपी नहीं आई हैं आप मिला लेगें पहला सत् शब्द से कथित शुद्ध ब्रह्म हैं दूसरा (तत्तोजो रोद्यत) इस वचन से माया मिश्रित ब्रह्म का बाधक वचन हैं दूसरा हुआ अब तृतीय तंत्र

चतुर्थ जल पञ्चम अन्न अर्थात् पृथिवी यह पाँच हुआ इन तीन भूतों का समुदाय होना छठा हुआ अथवा साक्षी रूप से ब्रह्म रहता है। सप्तमाजीव हैं यही (सप्तथस्य) का अर्थ है। ब्रह्म जीव का भाई कैसे हो सकता है क्योंकि वह परमशुद्ध है। उत्तर यह हैं कि (चित्) नाम ज्ञान रूप से अथवा चेतन रूप से क्योंकि ब्रह्म और जीव का परस्पर संबंध होने से अर्थात् बिंव ब्रह्म प्रति बिंव जीव ए दो धर्म समान होने से ब्रह्म जीव का बड़ा भाई है। इसी प्रकार होने पर प्रपञ्च का अध्या रोप और अपबाद के लिये दो मंत्रों से साधन समूह को कहा जाता है। तृतीय मन्त्र में (सवाजं) पद है यहां पर सवाज पद से विद्याकी जो सेना शम दम तितीक्षा और उपर तिलियो जाती हैं। अविद्याकी सेना काम क्रोध लोध मोहादि इन दोनों का परस्पर शत्रु भाव है। तहां पर पूर्वोक्त जब दुर्बल होगा तब याग रूप अर्थात् श्रीराम स्मरण रूप युद्ध की प्रसक्ति नही होगी जब वराबर होगा तब पूर्योक्त जीत लेगा। वह अज्ञानी भी इसी तृतीय मंत्र में (अप दुष्यदा) पद हैं इस का अर्थ नाश हो गया हैं विषय जिससे अर्थात् खराब रास्ता से हट गया है जिसका चित्त (याता) इसी मंत्र में है इसका अर्थ ज्ञान मार्ग को प्राप्त कर लेगा निषिद्ध कर्म को करने से नरक की प्राप्ति और काम्य कर्म से अर्थात् फल की इच्छा से शुभ कर्म द्वारा नश्वर सुख जो स्वर्गादि को देने से दुषत करता है दुषित सुख त्याग कर श्रीराम स्मरण मार्ग से चलते हुए दुषित विषय को प्रतिकूल हटा देता है अर्थात् दबादेता है। इस अर्थ को दिखा कर वह ही अपने को ही। इसी तृतीय मंत्र में (शत दुरस्य) पद आया है इसका अर्थ विषय अनन्त है अनेक भोग द्वार होने से इसका वेद नाम ज्ञान का अभोग्य ही धन हैं शब्दादि

विषय पाञ्चसे उत्पन्न को। (सनिष्यन्) पद इसी मंत्र में पठित हैं इसका अर्थ श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेंद्रियसे उनका विषय पांच म अलग अलग देता हुआ उसी कारणसे । (स्वर्षाता) पद मंत्रमें है इसका अर्थ (स्वः) से स्वर्गादिक सुख शब्दित है अर्थात् कथन है। शब्दादि प्राप्तिसे जाय मान जो विषय है। (साता) पद से पृथक् पृथक् करता हुआ। (परिसदत्) यदपाठत हैं मत्र में सर्व विषय को परित्याग करके सुख पूर्वक बैठाहैं (यतः) नाम क्योंकि शब्द तो कान का ही विषय हैं इस लिये (तज्जं) नाम शब्द से जाय मान सुख भी उसी जीवका होता है जीव का अन्तर्यामी मुझ ब्रह्म में नही है अतः उदासीन भाव से रहता है। इस लिये ही (अनर्वा) पद इसी मंत्र घटित हैं व्याख्या यह हैं कि समस्त प्रवृत्ति से रहित हैं उन विषयों में व्याप्त नहीं होता हैं क्यों नही होता योगात् श्रीहरि आराधन रूप योग से (इसी लिये इस मंत्र में (शिश्न) पद आया हैं उप स्थेन्द्रियसे क्रिडा करते हुए उनका मादियों को नाशकर्ता हुआ ही अपने स्वरूप के ज्ञान पूर्वक प्रकाश मानसे रहता भया। अतः समस्त काम अपने स्वरूप ज्ञान में लीन हा जाता हैं और ऐसे होने पर स्व-स्वरूपा विर्भावही को मोक्ष रुप से कथन है। तृतीय मन्त्र की व्याख्या हो चुकी आगे चतुर्थ मंत्र का विवेचन दिखाते हैं। (सयह्य) यह पद आया हैं। सः) से अश्वकी तरह अश्व अर्थात् शीघ्र गति हो जिसका वह अर्वा कहलाता है। इसी तरह से योगी का है अर्थात् योगी का भेद तीन हैं मृदु मध्यम और तीव्र यहां पर तीव्र योगी की व्याख्या है तीव्र योगी ही (प्रधन्यासु) यह पद पठित मंत्र में हैं योग रूप भूमि में युद्ध योग्य होता हैं अर्थात् जिस योगीने समस्त शब्दादि विषय को जित लिया हैं वही योगी योग युक्त हो सकता है विषयी नहीं।

यह पांच कोश में (सप्ति) पद मंत्र में हैं उन उन कोशोको उत्तर उत्तर लीन कर्ता हुआ (यश्च अवनी) पद मंत्र में हैं व्याख्या यह है कि बड़ी मोटी भूमि में और सब तरह से व्याप्त होने पर (आइत्यभि विधौ) इस पूर्वोक्त अर्थ है सब प्रकार से हवन करता है अर्थात् सूक्ष्म विषय को भी अपने में विलीन कर लिया हैं अर्थात् सूक्ष्म विषय को भी मनसे हटा कर श्रीरामाराधन रूप योग में लगा है। पञ्च कोश को उत्तरो त्तर मिलाता जाता है और एक भी बाकी नही रखता है। (घृतं) पद मंत्र में है घृत द्रवी भूत होता हैं जल की तरह जैसे समुद्र का एकरस भरा पूरा है वैसेही योगी की गति जानना चाहिए (अपा दो अरथा) पद पठत हैं इस पद से यह ज्ञात हुआ की योगी आध्यात्मिक आधिदैविक इन दो अवलम्बों से रहित है। वैसेही आगे (द्रोण्यश्वासः) पद मंत्र में पठित है कथन यह हैं कि (नौ) शब्दका अर्थ वाणी में पाठ हैं और (द्रोंणि शब्द से वाणी रूप (नाव) की तरह अश्वकी भांति गमन रूप साधन हो जिसका वह (द्रोण्यश्वास कहा जाता है (तत्त्वमस्यादि वाक्य रूप नौ का बलसे काम है और अन्तिम आनन्दमय कोश हैं इसको पार करके पूच्छ रूप ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् "ब्रह्मपुच्छम् प्रतिष्ठितम्" इन वाक्य से जाना जाता हैं यह कथन अद्वैत सिद्धान्त के अनुकूल हुआ है विशिष्टाद्वैत मत में आनन्दमयस परा कोई वस्तु नही है ॥४॥ पूर्वोक्त जो चार मंत्रों का अर्थ को समस्त पञ्चम मंत्र का अधा ऋचा सें उन अर्थों को उप संहार करते हैं पञ्चम मन्त्र में भ :) पाठ है। वह पुरुष जीवात्मा स्तुति योग्य हैं (रूद्रोभिः) पद से एकादश अथवा छः इन्द्रिय रूप शत्र ओं से

रोदन करवाता है अर्थात् देहाभिमानी जीवात्मा को रोदन कराती है। मंत्र में (अशस्तवार) पद से यह ग्रहण होता है कि भयंकर संसार यातना निमित्त से मंगल शून्यदिन बीतता है अर्थात् इन्द्रिय सम्बन्धसे जन्म मरण रूप दिनव्यतीत करता है। फिर वही जीवात्मा (ऋभ्वा) पद से देवी रूपविद्या से। (आरे अवद्य) इस पद से जन्म मरण रूप अनर्थका त्याग पूर्वक गयं पद से अपना ज्ञान रूप पद को प्राप्त होता है अर्थात् जब यह समझता है कि मैं अपरिवर्तनीय नित्य रूप हूँ। चेतन को इन्द्रिय योग से बन्धन हैं जब अपने स्वरूप का ज्ञान होने परमोक्ष होता है। अपना स्वरूप क्या है मैं नित्य अपरिवर्तनीय हूँ और श्रीरामदास हूँ इस ज्ञान से शान्ति को प्राप्त होता है। इस प्रकार कथन से (वम्रस्य) पद मंत्र पठित हैं (वम्र पद का अर्थ जीव है (वम्र) के प्रति दो सम्बन्ध है एक आत्म स्वरूप दूसरा अनात्म स्वरूप इन दोनों को (विबव्री) पद से वेष्टित हैं अर्थात् अनात्मासे घिरा हैं अतः अपने रूप में अनात्मा को समेट लिया है। ऐसे होने पर जब समाधि रूपस्व प्रभुस्वरूप में लगता है तब स्वस्वरूप को अनात्मा जड़से अलग जानते हुए भी व्युत्थाने जागृत अवस्था में। मंत्र (अन्न) पदसे स्थूल देह को (अभीत्य) पद से सन्मुख हो करके (मुषायन) पदसे अपना आनन्द को चुराते हुए प्राप्त अवसर को अर्थात् संसृति जीवात्मा को इन्द्रिय गण रोलाती हैं। यहां पर रुद्र शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण है। इस कारण से यथार्थ आत्मरूप का प्रत्यक्ष करनेपर भी जैसे जले हुए वस्त्र की तरह देहाध्यासकी अनुवृत्ति अर्थात् देह सम्बन्धि जो जायमान सुख दुःखादि का अनुभव देह पात पर्यन्त बना रहता है यह जीवन्मुक्त का लक्षण है यदि ऐसा न माना

जावे तो जिस समय ज्ञान प्राप्त हुआ उसी काल में शरीर त्यक्त होना चाहिये परन्तु नही होता है अतः ॥ ४ ॥ इस प्रकार होने से आधिदैविक अदेह का अर्थसे आध्यात्मिक अर्थ को एक शुद्ध सत्त्व जाना जाता है। भाष्यकार सायनाचार्य ने बुद्धि की शुद्धि के लिये यज्ञ (तत्) से यज्ञ का अंगादि अर्थ देखाया है अर्थात् समस्त वेद मंत्रों को यज्ञ परकही लगाया हैं यह सब विषय वहा हो पर जानना चाहिये यहां पर नही क्योंकि वेद आध्यात्म आधिदैविकादिका भी प्रतिपादन करता है प्रकरण बससे ॥ ५ ॥

पितुर्मातुरध्या ये सम स्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान् ॥ इन्द्र द्विष्टामपधमंति मायया त्वच मसिन्कीं भूमनो दिवस्परि॥६॥

इस प्रकार पांच मंत्रों से संक्षिप्त श्रीरामायण का प्रतिपादन किया। तथा आध्यात्मिक अर्थ का भी प्रदर्शन किया। अव 'अथ' इससे छट्टे मंत्रकी व्याख्या की जाती हैं इषुर्नधन्वीय इत्यादि मंत्र पंचक में श्रीरामायण के उत्पत्तिके निमित्त बनाये है। नारदस्य तुतद्वा क्यं' इत्यादि तीन सर्ग से अर्थात् मूल-रामायण और वालकांडादि तीन सर्ग इन्ही पञ्च मंत्रों का व्याख्या रूप है। तस्य उसका अभिप्राय यह है कि जैसे कोड़ी खोजता है दैववशात् मणि मिल गई उसका असीम आनन्द प्राप्त होता है। तैसे ही महर्षि श्रीराम कथा खोजते थे प्राप्त हुई पश्चात् साक्षात् श्रीराम प्रभुमिले यह कथा मुख से अर्थात् श्रीरामायण रूप से जानी जाती है (पितुर्मातुः) पिता तथा माता की अपेक्षा से (अधि) अधिक (आ) अत्यन्त (ये)

महान्पुरुष हैं क्यों कि चतुर्वर्णात्मकजनों के हित के लिये (समस्वरन्) सब तरह से श्रीरामयशको गायन किए। सम-स्वरन् यह बहु बचन क्योंकि या पूजार्थ में होने से उन्ही महा-न्पुरुष ने श्रीरामायण को किए। वह महानुभाव सौ माता तथा पिता से भी आप्त तम है। क्यों अधिक हैं माता पिता भगवत् प्राप्ति उपदेश नही करते संसार बन्धकारक ही उप-देश देते हैं। अतः निर्हेतु महानुभाव का हितोपदेश होने से अधिक है। वह कैसे हैं (ऋचा) बत्तिस अक्षर वाले अनुष्टुप् छन्द को बनाकर (शोचन्त) शोक करते हुए शोक पूर्वक ही बत्तिस अक्षर रूप वाक्य को उच्चारण करते हुवे। फिर महानुभाव कैसे हैं (अव्रतान्) संस्कार रहित हिंसाकरने वाले व्याध को (संदहन्त) इस कारणसे मानो कि शोक रूप अग्नि से अभि ही भस्म करदेंगे॥ ते वह पूज्य पाद अपने किये हुए श्रीराम चरित्र से (मायया) मूला विद्या के साथ जोजन हैं उनको (असिक्नीं) पापमयी काला वर्ण अर्थात् अशुद्धान्तः करण वालों को (त्वचम्) पंच भूत शरीर को (अपधमन्ति) दूरीकर्ता हैं अर्थात् श्रीराम चरित्र सुनने वाले के समस्त पाप दुर्वासना को हटा देती है वह कैसा हैं त्वचा (इन्द्र द्विष्टाम) इन्द्रजीवात्मा द्विष्ट नानायोनि निपातन से दुःख वाला कार्य को ही कर्ता है। जिससे उसको भूलोक से तथा स्वर्ग लोक से लवटा देती हैं यह सब श्रीरामचरित्र का विशेषण है। कहने का भाव यह हैं कि मोक्ष दे देती हैं। मुक्त पुरुष का शरीर तीनों लोक में भी नही है प्राकृत शरीर रहित मुक्त का प्रिय वस्तु और अप्रिय वस्तु बाधा नही करती है॥

अशरीरंवा वसंतं नप्रियाप्रियेस्पृशतः ॥६॥

यह श्रुति प्रमाण वाक्य भी है।

प्रत्नान्मानादध्याये समस्वरन् श्लोक यंत्रासो रभसस्य मंतवः ॥ अपानक्षासो वधिरा अहासत ऋतस्य पंथान्नतरंति दुष्कृतः ॥ ७ ॥

जिस प्रमाण को अवलम्ब करके ते वह महर्षि (समस्वरन्) श्रीराम यशको गायन करते हुवे जिसऋचासे अर्थात् श्लोक मे शोक को करते हुए जैसे ऋच श्लोक का (संस्वर) गायन हेतु हैं। यह तीनों को दिखाते हैं समस्वरन् शोकमकुर्वन् सं-स्वर हेतुत्वम् यह तीन है। (प्रत्नान्मानात्) प्रत्नं पुरातन मान प्रमाण अथवा वेदादि को। लोक को बनाते समय में ईश्वर संकल्प प्राप्त करके (ये अधि, येधि) पूर्वरूप हुआ है। अधिक की तीन करते हुवे श्रुति को अथवा दिव्य ज्ञान पाकर के रस्यं-पाप हर काव्यको अर्थात् श्लोक को किये वह महानुभाव (श्लोकयंत्रासः) श्लोक ही यंत्र की तरह हैं काव्य करने में प्रवर्तक हों जिसका (ते) वह श्लोकयंत्रा अर्थात् श्लोक यंत्र महर्षि हैं। श्लाक का अनुबाद अर्थात् कथन से ऋच श्लोक का विचार करने पर उसका श्लोकरुप देखकर इसके तुल्य श्लोक से नारद उप दिष्ट पुरुष की प्रशंसा हैं ऐसा समझ कर प्रबृत्त हुवे॥ इस हेतु से श्लोक में जो श हैं उसका अर्थ शुक्ल है और लोक का अर्थ लोकिक हैं अर्थात् शोभायुक्त होकर सा लोचन करने से श्लोक शब्द को (निष्पत्ति देखी ज ती हैं। इहां पर भी पूजार्थ में बहुवचन है। शोका नु-वादि नीको संस्कार रहितव्याधको जलाने वाले श्लोक को को पढ़ते हैं (रभसस्य) इत्यादि में इस जो डने पर पूर्णवृत्तिस अत-

र का अनुष्टुप् छन्द होता है जहां पर कम अक्षर हों वहां पर इय अर्थात् रभसस्य है तहां इय जोड़ देने से रभसासिय पाठ जानना अर्थात् वर्ण द्वयकल्पना से पूर्णपद की निष्पत्ति होती हैं क्योंकि ब्रह्म गायत्री में गिनने पर तेइस अक्षर होते हैं जिस पदमें(वरेण्य) है वहां पर इय समावेशकर देने पर अर्थात् (वरेणि) (य) ऐसे करने पर चौबिस अक्षर युक्त गायत्री है इसी प्रकार प्रकृत में भी जानना चाहिये (दुष्कृत) यह अन्तपद हैं। (रभसस्य) यहां से लेकर दष्कृत पर्यन्त द्वात्रिंशत् वर्णों की व्यवस्था होती है। (जबरभसासिथ) होने पर यहां पर अकार्य अर्थात्जोड़ा क्रौंचपक्षी में से एक को मार देना रूप अकार्य को देखकर शोक का उत्पन्न करने वाले को शाप दिया देखा जाता है जैसे (रभसस्यमन्तवः) चित्त रूप नदी वेगको मानते हुए। काम क्रोधादिवश हाकर (अनक्षासः) अक्षामिन्द्रियं नअक्षः अनक्षास कार्याकार्य ज्ञान से रहित होने से मनुष्य अन्धाबधिरा आर शास्त्र श्रवण हीन कहा जाता है (ऋतस्य) सत्यरूप मार्ग को (अप अहा सतः) अपका अर्थ दुर अहासत का अर्थ त्याग दिया। इसी लिये दुष्कृतः, पाप फल से नरक को नहीं तरता है। इस कारणसे अरे दुष्ट व्याध तुम ने अकार्य कर्म को किया इस लिये तुम अव्रत होने से भी (दुष्कृत को नपार होगा यह भाव है। इसी अर्थ को बोधन करने वाला श्लोक श्रीरामायण में देखा जाता हैं।

मा निषादप्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीःसमाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्,, इति।
अत्र 'यद् गायत्री च पंक्तिश्च ते द्वे अनुष्टुभौ,

इति, जैसे द्वे अनुष्टुभौ द्वात्रिंशदक्षरैर्भवतः ।

द्वात्रिंशद्‌ अक्षर मिलकर दो अनुष्टुब्छन्द होता है । इसी तरह से ।

जगत्यागमेऽपि,

आगम में जगती छन्द होता है । रभसस्येत्यादि में अनुष्टुप्छन्द है । यद्वा दूसरा अर्थ यह है कि रभसस्यमन्तवोप, यहां पर रभसस्यमन्तव उपेत्य जानना । गुण होने से वापेत्य हुआ अर्थात् वोपेत्य का अर्थ योजना इस पदमें अनुष्पाद हैं अनक्षेत्यादि में त्रिष्टुप्पाद छन्द है । ऋतस्येत्यादि में जगती छन्द है । इस प्रकार पादकल्पनासे सर्ववृत्त अर्थात् सर्व छन्द हो सकते हैं यह देखा गया है । तैसे ही श्रुति गमक है ।

"एतानिवावसर्वाणि छन्दांसि गायत्रंत्रैष्टुभंजागतमानुष्टुभमाचन्याति ॥

यह समस्त छन्द गायत्री में अनुष्टुप् छन्द हैं जगती छन्द को अनुष्टुप् छन्दको आरचण प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

सहस्र धारे वितते पवित्र आवाचंपुनंति कवयो मनीषिणः ॥ रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वंचः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ८ ॥

इस श्रुति के अनुसार चौबीस और ४० अक्षर अर्थात चौसठ अक्षर होते हैं दो अनुष्टुप छन्द हुए यह पूर्वोक्त एतानिवाव श्रुति की अभिप्राय है ॥ यहां पर (संस्वरणं) से मधुर

---

† पूर्वरूप के स्थान में गुण दिया गया है । पूर्वरूप का आशय टीकाकार जानते होंगे ।

स्वरसे श्रीरामयशका गान किया कोकिलपक्षी की तरह ऊंच शब्द से उसका उपबृंहण अर्थात् व्याख्या रूप यह श्लोक हो।

'कूजंतं रामरामेति'

श्लोक में श्लोक का दर्शन प्रवृत्ति से (तैः) उन कविने क्या किया इस लिये कहता हूँ। (सहस्रेति) मंत्र में आपठित है आ का अर्थ आसमन्तात् (वितते) व्याप्त महा विष्णु में व्याप्त हैं (सहस्रधारे) चन्द्र किरण रूप उस उस इ ५ की प्रवृत्ति से प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा (सा) श्रीराम कथा रूप से अथवा अनन्तप्रवाह में फैला हो (पवित्रे) पावननिमित्त होने पर ज्ञानी जितेन्द्रिय कवि अर्थात् गुप्त प्रगट रहस्यों के जानने वाले श्लोक बनाने में पूर्ण समर्थ वे अपनी वाणी को पवित्र अर्थात् भगवत् गुण गण कीर्तन से वाल्मीकि आदि कवि पवित्र करते हैं। इन सब कवियों के मध्य में (रूद्रासः) पूजार्थ में बहु बचन हैं। यहां पर रूद्रवोधक श्रीहनुमान जी हैं (इषिरासः) वाण की समान है गमन जिसका (अद्रुहः) द्रोहरहित (स्पशः) दूतरूपहो कर श्रीजनजाजीकेखोजनेका चार हुए वह और कैसे हैं (स्वंचः) सुष्ठु अश्चतीति (स्वंचः) शोभनगमन करने वाले अर्थात् श्रीजनकजा जी के अन्वेषण में तत्पर हैं (सुदृशः) सम्यक् परीक्षक अर्थात् श्रीजनक कुमारीजी का सतीत्व भाव से पहचान करने वाले हैं (नृचक्षसः) मनुष्य रूप श्री जगदम्बा को चक्षस का अर्थ देखते हैं। वस्त्रवाल्मीकि की तरह रुद्रोपि श्रीहनुमान भी श्रीरामायण को किये तहां पर श्रीरामदास के मध्यमें अधिक दास अर्थात् वाल्मीकिजी तो केवल श्रीरामचरित्र किये श्रीहनुमानजीने दोनों काम किये अर्थात् चार काम और श्रीरामायण रचना काम अत. बड़े हैं।

इसी तरह से और भी श्रीराम स्तोत्र बनाने वाले दास भावसे वाणी को और देह को पवित्रकरें यह भाव हैं ॥ ८ ॥

ऋतस्य गोपा नदभाय
सुक्रतु स्त्री पवित्रा हृद्यन्तरादधे ॥
विद्वान्स विश्वाभुवनाभिपश्यत्यवा
जुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ९ ॥

एवं परमेश्वर में वाणी को पवित्र करने वाले को क्या फल मिलता है इस पर कहते हैं (ऋत स्येति) जो ज्ञानी शुद्ध भाव से भगवद्गुण कथन से वाणी को पावन करते हैं वह सत्य का रक्षक है दंभके लिये नही होता है किन्तु आत्मज्ञान के पालक होते हैं। जोंकि विद्या महात्म्य ज्ञान से दूसरा दंभ होने के लिये प्रवृत्त नही होता है और भय रहित हाता है अर्थात् अभय प्राप्त करता है जिस हेतु से (सुक्रतुः) भगवत्कैंकर्य रूप ध्यान में लगा रहता है (सएवंभूतः) वह ऐसे होने पर (त्रीत्रीणि) तीन कोप वित्र करता है (अन्तः) हृदय में (आदधे) धारण करता है। उनके विषय में कहा जाता है (विद्व न्) वह विद्वान् आत्म ज्ञानी हो करके समस्त जगत् को चारो ओर से साकल्य भाव से अपने रूप को देखता है वैसे ही (अजुष्टान्) प्रीति रहित दीन जनों को अपने रूप को देखता है पूर्वोक्त तीन कहा है उनमें से पहला आगे दूसरा है (अवति) अतिशय पालन करता है। क्रिया के समभिहार अर्थात वारंवार होने में लोटलकार होता है लाटो हिसी) इस सूत्र से लोट्कार्यहः हुआ। अतो हेः इस सूत्रसे हि का लुक् हो गया तब

(अव) रूप सिद्ध हुआ तै ने (अव्रतान्) यज्ञादि कर्म और श्रीरामोपासना इन दोनों से भ्रष्ट हैं (कर्ते) छेदन करता हैं इसमें इस योग से अर्थात् परोपकारसे कर्ते का अर्थ संग्राम में मारता है अर्थात् उस पापिष्ठ को युद्ध भूमि में मरण प्रापण से उद्धार अर्थात् स्वर्ग होता है। तस्य ज्ञानं उस ज्ञान से दया शौर्य और लोकोपकार की वृद्धि होती है। यह ही तीन पवित्र दूसरे ठिकाने लिखा है। नहि ज्ञानेन सदृश मित्यादि। न दयासदृशरिति यह निग्रह मुख अर्थात् दण्ड से अनुग्रह दया पूर्वक शत्रुओं में भी परम धर्म देखा जाता है ॥ ९ ॥

ऋतस्य तंतुर्विततः पवित्र आजिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ॥ धीराश्चित्तत्समिनक्षंत आशतात्राकर्तमवपदात्य प्रभुः ॥ १० ॥

नव मंत्र के अर्थ बाद श्रीराम कथा का दूसरी तरह स्तुति करता हुआ और दूसरे कथन को निंदा करता हैं (ऋतस्यतंतुरिति) सत्य रूप श्रीराम का प्रापक जानने के लिये (तंतु) तंतु की तरह तंतु अर्थात् ऊर्ध्वमोक्ष पद में चढ़ने के साधन हैं वह जैसे उर्णनाभि कमरीतंतु से ऊञ्चेको औत् चढ़ जाती हैं वैसे ही श्रीरामोपासना से मोक्षरूप पद स्थान में चढ़ जाते हैं।

"सयथोर्णनाभिस्तंतुनोच्चैरोत्"

यह मैत्रायणीय श्रुति सिद्ध दृष्टान्त हैं श्रीविष्णु यश गायन रूप वाणी पवन रूप हो के कवियों के जिह्वा की अग्र भाग में स्थित होती (वरुणस्य) भाग मोक्षेच्छु प्राणियों से भजन

योग्य हैं श्रीहरिसंबन्धिमाया का (आ) अत्यन्त विस्तार करने वाले का श्रीरामकथा रूप हैं (वरुणस्य) जिह्वाकी अग्र भाग में योजना योग्य हैं। वरुणका पुत्र दूसरा नाम प्राचेतस उन्हीं को बाल्मीकि भी कहा जाता है। धीरा ज्ञानी अपने चित्त में ध्यानावस्थित है (तत्) वही (तं) तंतु समिनक्षन्त अर्थात् सर्व प्रकार से समस्त गुप्त प्रकट रहस्यों को साक्षात् जान जाते हैं एक देश से नहीं (आशत) प्राप्त होते हैं। इहां पर श्रीराम कथा का अधिगमें साक्षात्कार में अपने आधीन करने पर भी (अप्रभुः) जिह्वा को व्यापर के लिये अर्थात् प्रभु चरित्र समस्त जानने में असमर्थ ही है (सकर्तम्) हिंसा स्थान को अर्थात् असिपत्रवन नाम के नरक को (अवपदाति) नीचको हटा देता है अर्थात् अपने से दूर कर देता है अव पूर्वक पद गतौ धातु से पञ्चम लकार लेट् है आड् का आगम होने से अव पदाति हुआ है। उसी श्रीराम कथा की विशेष रूप से प्रशंसा है। तां सुत) इत्यादि नीचे लिखित मंत्र से जानना। उक्त तीन मंत्रों में यहां पर अनुक्रम है ॥ १० ॥ हे मघवन् धनवन् लक्ष्मीपते आप का अक्षय कथा रूप कीतिको अति सुन्दर यश महिमा करके और माहात्म्यसे मैं शुद्ध भाव से कहता हूं ॥ १० ॥

तां सुतेकीर्तिं मघवन्महित्वा यत्वाभीते रोदसी अह्वयेताम् ॥ प्रावो देवाँ आतिरोदासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥ ११ ॥

उसको ही कहा जाता है (यत्) जबतुम (भीते) राक्षसों से डराने (रोदसी) स्वर्ग और पृथिवी में स्थित प्रजा हमसबों

की रक्षा करो इस प्रकार आपको (आह्वयेतान्) पुकारती है तब आप देव गणों को (प्राव:) विशेषरूप से पालन करते हो (दासम्) पहले जयविजय नाम प्रसिद्ध थे वही रावणादिको (ओजः) अपने सामर्थ्य से (अतिर:) तिरस्कार करते हो। बधप्रापणसे अर्थात् आप श्री के हाथ मे मरणे की इच्छा करता है वैसेही (अस्यै) अन्य प्रजाके लिये मानुष रूप अर्थात् राजा होकर हे (इन्द्र) परमेश्वर श्रीराम (यत् अशिक्षः) चातु-वर्णाश्रम धर्मों को शिक्षा देते हो (तां ते कीर्तिम्) उस की र्तिको आपकी है। यहां पर रोदसी पदसे उद्वेजक दास का दुख हटाना ही उचित है। प्रजा शिक्षकत्व रूप मुख्य श्रीराम से अन्यत्र भगवदवतारों में नहीं है। यद्वा से दूसरा अर्थ अभिषेक अर्थात् युवराज पदका न स्वीकार करने से इन्द्रदेव में वारंवार राक्षसों से पराभव होने से मघवत्वपद इन्द्रदेव में मुख्य नहीं हैं किन्तु श्रुति प्रसिद्ध इन्द्र शब्द का अर्थ योग्य आप श्री है। इसी लिये दूसरे के प्रति मंत्र कथन नही करता है। यहां क्या करके (तांसुतेकीर्तिम्) यहाँ से प्रारम्भकर

"स्वांप्रजाम् बृहदुक्थो महित्वावरेष्व दधादा परेषु"

यहां तक एक विंशति मंत्रों का उपक्रम बिच में जो विचार होता है और उपसंहार यह तीनो ठीकाने पर श्रीराम जी को ही प्रमाण पाया जाता है। तहां उपक्रम का व्याख्यान किया गया है। इसी तरह उप संहार में भी बृहदुक्थ पद से महा कर्मा श्रीराम हैं क्यों कि अपने पुत्र रूप प्रजाओंको और महित्वा अपने दिव्य प्रभावसे (क्रमादवरेषु) पदसे भूस्थान में (आदधात) धारण अर्थात् व्याप्त है और नित्य धामबोधक वैकुण्ठादि लोंको में भी व्याप्त हैं प्रजाओंके समान शिक्षण श्रीरामजी में ही देखा

गया। यहां वृहदुक्थ ऋषि ने अपने आत्मासे श्रीराम जी का अभेद किया और कर्मों को अपने आत्मा में आरोप करके कहते हैं कि।

"अहंमनुरभवम् सूर्यश्चाभवम्"

जैसे वामदेव ऋषि ने गर्भ में ही अनुसंधान किया। और यहां पर मन्त्र कथा क्रम से अर्थात् जिस जिस स्थान पर कथा आवेगी उन उन कथाओं का व्याख्यान किया जावेगा। अध्यात्मपक्ष में तो यह है कि

'द्वय्याहप्राजापत्या देवाश्चासुराः

वृहदारण्यक प्रथमाध्याय में है शमदमादि शब्द का प्रयोग है और काम क्रोधादि में असुरों शब्द का प्रयोग होता है इसी प्रकार से मंत्र का अर्थ जाना जाता है। सकल संसार अनर्थमूल होने से इन कामादिकों के वश होने से देव मनुष्य घबराकर प्रभु शरण होते हैं तब प्रभुकामादियों को नाशकर देते है शमादिसम्पन्न देवों के रक्षक बनते है मुमुक्षुजनों को आप आचार्य रूप से और सत् व्यवहार करके शिक्षा प्रदान करते हैं यह देखा सुना है।। ११ ।।

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः
क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे रघुः ॥
श्येनः पतयदंधो अच्छा युवा कविर्दीदय-
द्गोषुगच्छन् ॥ १२ ॥

अहा वनका भेद वर्णन करते हैं (यत्) जो क्षेत्ररूप

शरीर को (अस्य) आने वाले का (उर्विया) श्रेष्ठ भाव से अभि मत हैं (दीर्घपाथे] बड़ा संसार रूप मार्ग में वह (सूर्यः सप्ताश्वः) अपने को पुत्र रूप से (आयातु) आवें सूर्य वंश में अलौकिक दिव्य शरीर को धारण करें तहां भी (रघुः) रघुवंशी क्षत्रिय होकर (श्येनः) बाजपक्षी रूप ईश्वर (अ घो अच्छ) अन्नमयपिंड शरीर को संमुख अर्थात् अन्नभक्षण योग्य मनुष्य शरीर है (पतयत्) प्राप्त करें वह शरीर कीदृशक्रिये (यवान) और कवि होते हुए (गोषु) भूप्रदेशमं चलता हुआ (दीदयत्) देदीप्यमान हैं। रघुवंश में शरीर को धारण करके हमसबों के रक्षक बनें (पक्षमें जैसे सूर्यदेव सर्वेन्द्रिय गोचर और सबोंको प्रकाश करें वैसे ही स्वयं अखण्ड ज्ञानी और स्वयं प्रकाश रूप से विद्यमान (श्येन) ईश्वर (रघु) नाम समस्त ब्रह्माशिवादि देव दौरते होते हुवेभी उल्लंघननही कर सक ते हैं अर्थात् रघुपदसे यही जाना जाता है कि ईश्वर शीघ्र गामी है (नरम्) आवें वह कैसे हैं बोद्धा अर्थात् ज्ञानबल से जवान ऋषि सनकादि की तरह कवि सूक्ष्मदर्शी होते हुए लोकान् मनुष्यों पर अनुग्रह दयाकरें (सप्ताश्वत्वंतु) यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार यह नाम से पांच हैं धारणा ध्यान समाधि रूप संयम यह छः है प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा तर्क समाधि यह षडंग हैं यह मैत्रायणीय श्रुति की उपसंहार से सप्तअश्व है आगम हैं साधन जिसका वह सप्ताश्व कहा जाता है (यहां भी अ ऋणवतीरण्य अर्थात् आज्ञा के करने वाले समुद्र हैं उसके नियंतृत्व अर्थात् शिक्षक यह सब बात मंत्र मेंसुना गया है और रघुपदबोधित श्रीराम में ही देखा गया है अन्यत्र अर्थात् दक्षिण दिशा का अध्यक्ष जो अगस्त्य है इन में और श्रीरामजी से पूर्व में होने वाले जो रघुवंशी हैं इन में

यह शासन नहीं देखा गया किन्तु चिन्मय परात्पर बोधित दशरथ कुमार के लिये ही मंत्र का निश्चय है ॥ १२ ॥

सजातो गर्भो असि रोदस्यो रग्ने चोरुर्विभृत ओषधीषु॥ चित्रः शिशुः परितमांस्यक्तून्प्रमातृभ्योधिकनिक्रदद्गाः ॥ १३ ॥

इस प्रकार प्रार्थित ईश्वर का वन्हि ही शरीरत्व को प्राप्त होना है यह कहा जाता है (हे अग्ने) अग्ने नियमनत्वात् अग्नि तत्संबोधने हे अग्ने तुम (रोदसि) स्वर्ग लोक और पृथिवी लोक के मध्य भाग में माता पिताओंके शरीर में शुक्र और शोणित रूप से गर्भ होकर उत्पन्न नही हो क्योंकि (ओषधीषु) अग्नि से दिया हुआ जो खीर रूप में (विभृतः) मंत्र ज्ञाता त्रसिष्ठादिऋषि से धारण किये (चारूः) सुन्दर हैं (चित्रः) अनेकाश्चर्य मय हो (शिशुः) कौशल्यादि माता से यह प्राप्त हुये हैं (अधिकनिक्रदत्) आह्वान करते हुए (अधिगाः) विशेष रूप से प्राप्त होते हो। यज्ञादि रूप कर्म से धारण किये चरु भक्षण मात्र से ही गर्भ धारण कहा है इसी लिये श्रीराम जी के जन्म को अलौकिक कहा गया यहां पर भी ऋग् प्रमाण है॥

अत्रापि "भद्रो भद्रया सचमान आगा-त्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् सुप्रकेतैर्द्युभि रग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्"

(भद्रः) भजन करने योग्य श्रीराम भद्र (भद्रया) श्र जन- कजा सहित (सचमानः) सज्जित होकर (आ ात्) दण्ड- कारण्यको आते भये तब (स्वसारम्) अंगुली को अर्थात् जनकजा जी के हाथ को पकड़ने को (जारः) रावण (पश्चात्) श्रीराम के परोक्षमें (अभ्येति) आता है तब रावण के मरण के पश्चात् (सुप्रकेतैः) अच्छे चिन्हों से (उशद्भिः) दीप्तिमान (वर्णैः) वर्णों से उप लांछत (द्युभिः) स्वर्गलोक की साधन भूत रामजी की दारा सहित (अग्नि) अग्निदेव (रामम) श्रीरामजी के सन्मुख (अभ्यस्थात) उपस्थित होता है अर्थात् श्रीजनकजा शुद्ध है यह कह कर श्रीजनकनन्दनी जी को सम- र्पण करता है इससे श्रीराम का अवतार प्रति युग में सिद्ध होता है। और बहुत म ताओं से समुचित होता है। श्रीराम शब्द से यह अर्थ निकला कि एक माता में होने वाले परशु रामजी के लिये नहीं और दो माता में होने वाले बासुदेव बलराम में नहीं घटित होता है किन्तु दशरथ कुमार ही में घटित होता है।तहां भी कतिपय अर्थात् किसी मंत्रों में कथोप- योगी है उनकी यथा स्थान में ही उदाहरण देख के व्याख्या की जावेगी। दूसरे पक्षमें यह अर्थ है कि अग्नि शब्द विज्ञान का धारण करने वाले का यह इष्टादिकारिणां अर्थात् यज्ञादि कर्म करने वाले को स्वर्ग प्राप्ति होती है। कर्म शेषेण अर्थात् कुछ फल बाकी रहने से भूमि को प्राप्त होता है वह जीववृष्टि द्वारा ओषधि संपर्क को प्राप्त अनुशायी अर्थात् फल शेष जीवों का संबन्ध हो कर प्रथम ओषधि में अर्थात् अन्नादि में विभून सनूप्रवेश करता हुवा पीछे स्वर्ग पृथिवियों का स्वर्ग पिता रूप पृथिवी माता रूप यह मन्त्र स्वीकार से माता में शोणित रूप से पिता में रेत रूप से परिणत होते हुए और दोनों के संयो-

ग से माताओं मे उत्पन्न होता है उन औषधि सम्बन्ध से पूर्व जन्म चिन्ह से मातृभ्य यह बहुवचन से यह ज्ञात हुवा कि संसार का अनादित्व दिखाया।

"चित्रः शिशुर्जातः सन्नतमांस्यक्तू न्'

इन पदों से यह देखा गया कि देहादि में आत्म बुद्धि अर्थात् स्वकिया अभिमान रूप बुद्धि अतः अज्ञान रूप रात्री को प्राप्त होकर सदैव दुःखित होता हुवा विशेष रूप से (कनिक्रदत्) रोदन करते हुए (अधिगः) विशेष प्राप्त होते हो यहां पर विज्ञान ही का अर्थात् भ्रमात्मक रूप ज्ञान तमोभि भूतत्वं अन्धकार में पड़कर भोगेच्छु होकर शोक युक्त बनता है ॥१३॥

विष्णु रित्था परमस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभियाति तृतीयम्॥ आसा यदस्य पयोकृत स्वं सचेतसोअभ्यर्चन्त्यत्र ॥ १४॥

इस प्रकार माताओं से जन्म कहकर रुद्रशब्द चरु बोधक हैं। चरु भोजन होनेपर क्या होता भया तदाह (विष्णु) नारायणही इस अग्निके गर्भरूप होके सर्वोत्कृष्ट रूप धारणकर राक्षसों का वधके लिये विशेष रूपसे इच्छा किये (विद्वान) जानते हुये जहां गर्भमें प्रगट हुवे कैसे प्रगट हुये जैसे जलमें चन्द्र कीतरह अर्थात् अन्तरिक्ष चन्द्र और जलस्थ चन्द्र ऐक्य का भाव यह है कि वैकुण्ठस्थ और भूमण्डलस्थ ऐक्य है। वह (बृहन) वराब्रह्माही होता हुआ दिव्य नित्य विज्ञान गुणों को अज्ञानसे स्पर्श न हुआ (तृतीयं) शुद्ध ब्रह्म कारण के अपेक्षा से सर्वोत्कृष्ट है अर्थात् कारण सूक्ष्म देह और स्थूलदेह ये तीन

में से कार्य देहको (अभियाति) धारण करते हैं (अस्य) इस देहका (आसा) आत्ना अर्थात् मुखसे यह रूपभजन द्वारा आसा की सिद्धि (पद्दत) इस सूत्रसे अस्य शब्दका आसन आदेश हुआ । सुगाँसुलुक् । इस सूत्रसे तृतीया का एकवचन टाका डा आदेश हुआ अन और ड मात्रका लोप हुआ स आ में मिला (आसा) बना (पय.) क्षीरसमुद्रको अपना गृह किये वैसे ही क्षीर समुद्र रूप भूमण्डलोंको किये है । उपमन्यु आदि भक्त हुये यह हेतु का (सचेत सो) ज्ञानी (अत्र) यहांपर हो तृतीये रूप स्थूल देहमें श्रद्धायुक्त होकर श्रीविष्णु को सेवादि कार्यको करते हैं इसी कारणसे (अस्य) इनका भक्तके ऊपर मुख्य अनुग्रह प्रयोजन होता है। ओर दुष्ट दण्ड दया का अंगभूत है यह जाना जाता है । पक्षमें विष्णु अन्तर्यामी होकर सर्वोत्कृष्ट मोक्षरूप जरूरत है । इस मंत्रमें सर्वनाम तीन हैं (अस्य स्वं) और (यत्) मानुष देहही धारण करना प्रयो-जन है ॥ १४ ॥

अत उत्वा पितुभृतो जनित्री रन्नावृधं प्रतिचरंत्यन्नैः ॥ ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असित्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥ १५ ॥

(अतः) उक्तहेतुसे (त्वा) तुझ विष्णु को (उ) निश्चित है (पितुभृत) अन्नपुष्ट (जनित्रीर्मातरः) उत्पन्न करनेवाली माता (अन्नावृधं) श्रीप्रभुविराट् रूपने समस्त प्राणियों को पालन करते हुवेभी भूप्रदेशमें (अन्नैः) माताकरनेके सम्बन्धसे अन्न दुग्धादि द्वारा पालित होते हैं (ता) माताओंको (त्वम्) तुमफिर दूसरा रूप के पूर्वक अपश्रीको आराधयन्ती सता-

माता अर्थात् पूर्वजन्म सतरूपा रूपसे आपको सेवादि की थी पश्चात पीछे ने आराध्य राध्य रूपा अर्थात् फलरूपमें आपको चाहता हैं। और आप उनका आराधन करते हो जिससे तुम (मानुषीषु विक्षु) पुत्र रूपमें होते हो होकर यज्ञादि सदाचारों का बढ़ाते हो। इसी लिये माता देवको मानते हो। पक्षमें त्वत्तः) सुखके चाहने वाली माताको दुःखितासतीवनमें जाकर खोजतेहो। इस निषिद्ध कर्माचारसे मोहकहा। अक्षर योजनका स्व रूप है 'अन्नावृधम्' अन्नावृधम् अन्नावृधम् कैसे अन्नवृधम् होना चाही। 'विश्वा युषम्' इससूत्र से आकारकानिपातन से पूर्व पदका दीर्घ हुआ है अतः अन्नावृधम् हुआ। ॥ १५ ॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्व-स्तस्थौ नेमवग्लापयंति॥ मंत्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १६ ॥

जनित्री मात्राकी अपेक्षा संख्या विशेष रूपसे कही जाती है (तिस्र. कौशल्यादि माता तीन हैं (त्रीन् पितॄन्) उत्पन्न कराने वाले दशरथ वशिष्ठ उपनेता विश्वामित्र विद्याप्रदान करके इत्यादि तीनको (विभृत्) पालनकरते भए (ऊर्ध्वम्) विज्ञान रूप धर्म होनेपर शोक और आयास नाम थकावतादि में मग्न रहित ही स्थित हुये। इसी लियेही (ईं) इनका सब मातायें (न अव) नही ग्लानी होती है। ग्लपन्ति होना चाही ग्लापयन्ति कैसे आर्ष होनेसे दीर्घ हो गया। देहके प्रदानसे देहकृत

दुःखसे तिरस्कृत नहीं होते हैं यहां पर हेतुका कहा जाता है (मन्त्रयन्ते) मंत्र देखाते हैं (दिवः पृष्ठे) मेरुशिखर पर (अमुष्य) इसका प्रतिपादक वाणी रूप उपनिषद को ब्रह्मादि देव सब (मन्त्रयन्ते) विचार करते हैं (विश्वम्) संसारको जानते है (अश्वमिन्वाम्) समस्त संसारमे व्याप्त करते हैं। जैसे कि एक विज्ञानसे सर्व विज्ञानदेने वाले नेतिनेति इसवाक्य से समस्त प्रपञ्च निषेध द्वारा बताया है ब्रह्मादि देवों द्वारा भी अन्वेषणीय (वाचम) वाणी के विषय रूप श्रीरामजी का माता से जायमान जो देहसो बन्ध कारक नहीं होता है यहांभी ईश्वर का त्रिमातृत्व दासरथी श्रीराम में है यह देखा गया है।

आध्यात्मपक्षमें (तिस्रोमातर) इसका क्या अर्थ है समष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप उपाधि यह तीन है यही माता तीनपिता कौन है तदभिमानि मायोपाधिक चैतन्य पिता है इनका अभिमानी चिदाभास ईश्वर है वैश्वानर हिरण्य गर्भ और अन्तर्यामी नाम वाले यह तीन पिता हैं। (तज्जो) तीनों से जायमान विज्ञान रूप धातु भी व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप से तीन है यह तीनों का अभि मानि चिदाभास जीव अविद्यापाधि युक्त चैतन्य विश्व तैजस और प्राज्ञ है। कहने का भाव यह हैं कि ईश्वर समष्टि १ व्यष्टि जीव २ कारण ईश्वर ३ प्राज्ञ सुषुप्ति ४ सूक्ष्म सूत्रात्मा५ तैजस स्वप्न ६ स्थूल वैश्वानर७ विश्वजाग्रत् ॥ इन सबोंका अधिष्ठान मायो पाधिईश्वर भी इन सब के संबंधमे विकार भाव को नही होते है यह कथन अद्वैत के सिद्धान्त से है। २६ ॥

चत्वारिते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ॥ त्वमंगतानि विश्वानि

वित्सेयेभिः कर्माणिमघवञ्च कर्थ ॥ १७ ॥

बहु माता की अपेक्षा रूपभेद को उसका तृतीय अर्थात् इसी मन्त्र में कहा जाता है (चत्वारि ते) नाम निश्चित् है। नाम के उपलक्षित रूप नाम कैसे नामानि होनाचाहि। वैदिक होने से विभक्ति कालोप हुआ है। (चत्वारि) चारो भाई (असुर्याणि) असुराणां हितानि असुर्याणि अर्थात् असुरों को दण्ड देकर शुद्ध करने वाले (अदाभ्यानि) अकथनीय आपकी महा-महिमा होती है। हे (अंग) हेप्रिय समस्तविश्व रूप शब्द आपही का वाचक है (वित्से) प्राप्त होता है (यैभिः) जिन रूपों से (मघवन्) हेमघवन् लक्ष्मीपते आपका कर्म कैसा है लक्ष्मण रूप से मेघनाद को मारा शत्रुघ्न रूप से लवणासुर को मारा यहसब कार्य किये अतः आप से यह अलग नहीहै। जैसे मृत्तिका से ही बीज अंकुर और द्रुम होते हैं वैसेही श्रीदशरथ महाराजने चरु में से तीन भाग किये एक एक भाग कौशल्या कैकेयी जी को दिया बचा एक भाग उसमें से दो भाग किये दोनों भाग दोनों को दिया और दोनों से सुमित्राजी को दिवाया इसी से श्रीसुमित्रा देवी जी को दो पुत्र हुवे। इतरे दोनों रानियों को एक एक पुत्र हुआ अतः चार हुये इन चारों में कार्य कारण भाव है जैसे अन्तर्यामी कारण रूप है विराट् कार्य रूप है इन दोनों के मध्यमें तीसरा सूत्रात्मा है सो उभय का धर्मानुसारी है अर्थात् अन्तर्यामी का कार्य विराट् विराट् का कार्य सूत्रात्मा है तहां इसके प्रति फल क्या निकला चैतन्य (जीव) भी उभयविध है तहां कार्य का अंश अर्थात् सूत्रात्मा का अंशवर्ति बिम्ब शत्रुघ्न है कार्य का उपाधि रूप श्रीभरत को (अनुपाति) अनुयायी होते हैं। कारणांश प्रतिबिम्ब अर्थात् विराट् काप्रति बिम्ब रूप श्री लक्ष्मणजी है। कारणोपाधि

अर्थात् अन्तर्यामी श्रीराम के अनुयायी होते है॥१७।

अमंदान्स्तोमान्प्रभरे मनीषासिंधाव
धिक्षियतो भाव्यस्य ॥ यो मे सहस्रममि
मीत सवान तूर्तो राजाश्रव इच्छमानः ॥१८॥

तीन माता और तीन पिता पूर्व मंत्र में बताये गये है अब तहां मुख्य पिता मुख्य माता को कहा जाता है (अमंदान्) इस मंत्र से लेकर सात ऋचा के सूक्त से तहां प्रकृतोपयोगि चार मंत्रों की व्याख्या की जाती है भाव्य पुत्रेण होने वाले पुत्र से अनुक्रमणिका में भाव यव्य यह पद से जाना जाता है भावयव्य का पुत्र कक्षीवान् पुत्र थे भाव यव्य में चार अक्षर है चार अक्षर में से दो अक्षर का लोप हुवा तब भाव्य हुवा। तहां इस आदि ऋचा में (अमंदान्) पद है। उसके भाव्य का अर्थ में (अमंदान्) का अर्थ अमूढ अर्थात् चारों प्रभु का यह विशेषण है मनुष्य शरीर होते हुवे भी बद्ध जीव के समान नही अर्थात् अखंड ज्ञानवान् है (स्तोमान्) स्तुति योग्य और वंश-परंपरा में सर्वोत्कृष्ट पुत्र हुवे (मनीषया) संकल्पसेही (प्रभरे) प्रकर्ष से सब वस्तुओं को इकट्ठा करते हैं। अर्थात् मैं करताहूँ वह कैसे है (सिन्धौ) समुद्र में भी (आंध) अधिक प्रभाव डाल कर (क्षियतः) ऐश्वर्य युक्त होते हैं। समुद्र के उपर से तु बना कर निवास अर्थात् गमन किये और समुद्र दमन अपने सामर्थ से किये भाव्य का अर्थ में पुत्रों को कल्पना करता हूँ जो भाव्य हैं वह मेरे लिये सहस्र संख्या युक्त गौओं को सबों को देने के लिये होवे। आर्ष होने से वर्ण द्वयका लोप हुवा है सनन मे और अ का सवान हुवा (अतुर्तो) अखंड (श्रव) कीर्ति को (सवान्) यज्ञोंकी इच्छा करते हुए ॥१२॥

उपमा श्यावाः स्वन येनदत्ता

वधूमन्तोदशरथासो अस्थुः ॥ षष्टिः सहस्रमनु

गव्यमागात्सनत् कक्षीवां अभिपित्वे अन्हां ॥१६॥

(स्वनयेन) राजाने (दत्ताः) दिया (श्यावा , काला काष्ठ से बना हुवा (दशरथा सां)

दशरथेतिष्ठति आसते दशरथासः ।

अर्थात् दशरथ के उपर बैठे हुये (वधूमन्तः) प्रत्येक शकटो रथपर थी (उपास्थुः) समीप में स्थित होवे तैसे (षष्टिः सहस्रं गव्यम्) साठ हजार गौओं के झुण्डरथ के पीछे पीछे (आगात्) हमारे प्रति आवें अतः मैं कक्षीवान हूँ अर्थात् भाव द्रव्य का पुत्र हूँ (अन्हां) क्रतून् यज्ञों को (अभिपित्वे) अभि का अर्थ चारो तरफ से पित्वेका अर्थ पालन में अर्थात् सुपात्र में देवे अथवा ईश्वर में (अनत्) धनों को बाटते हुये मैं हूं दशरथ का लक्षण पहले कह चुका हूं इसमें तो श्रीराम चरित्र ही है प्रसंग वशसे यह मंत्र उद्धृत किया है ॥१६॥

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ॥ मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ २ ॥

(दशरथस्य) दशरथ राजा के यज्ञ में प्राप्त हुवा है (चत्वारिंशत्) चालीस संख्या वाला (शोणाः) लाल घोड़ा (सहस्रस्य) हजार घोड़ा रथ में जोड़ाकर रथ हांकते हुवे भी यह

चालीस घोड़ा कैसे थे कि रथ के आगे से जाते थे एतने शीघ्र गामी थे (श्रेणि) रथनेमि पंक्ति को (नयन्ति) प्राप्त कर लेते है अति वेग होने से चलने से उन घोड़ों को (मदच्युतः) मदमस्त थे (कृशनावतो) थोड़ा सा न खैंचा जाय तो मानो खेचरहां जाय अर्थात् नियंत्रण से रस्सी की इसारे से चलने वाले थे क्योंकि वह सुशिक्षित थे (अत्यान्) अतिक्रमण करने वाले थे अर्थात् मेंढक के सदृश कूदते चलते थे (कक्षीवन्तः) भाव यव्य का पुत्र कक्षीवानादिदश पुत्र है सो (उदमृक्षन्त) सा दिन होकर अर्थात् घोड़ा पर बैठकर वह कैसे थे उन सबों के गुणों से अर्थात् चालों से संतुष्ट कर देते थे। क्योंकि वह पहले (पज्राः) पैरोसे चलते चलते थक गए थे ॥ अध्यात्मपक्ष में ब्रह्ममें छः उपाधि है। समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण और चिदाभास नाम जीवों का उपाधि विश्व तै जस प्राज्ञ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति। इनका आरोप कहा है अर्थात् इनका हटा देनेसे निर्विशेषवस्तु प्राप्तिके लिये योग्यता सिद्धि के लिये। 'अग्रम दान् इति'

मंत्र द्वयसे दशरथका दानादि को कहा गया है क्योंकि उन्होंने बड़ेकुल म जन्म ग्रहण किये इसीलिये बड़े बड़े यज्ञदानादि कर्म को करते हैं बड़ी ब्रह्मज्ञान अर्थात् श्रीराम प्रेमरूपप । भक्ति के योग्य होता है। "विविदिषन्तियज्ञे नदानेन'

इत्यादिश्रुति तृतीयमंत्र में अपवाद रूप से कहा जाता है। तहांपर यह अक्षरार्थ है। दशेन्द्रियाश्व युक्त है और मनोमयकोश दशरथ है। उनका (शोणाः) लालरूप राग प्रेम है दशेन्द्रिय है एकैक में चारविषय है) प्रसुप्त तनु विच्छिन्न और उदार भेदसे चार दहायी चालीस होता है (वे) तावन्तोपि

इतना होते हुवे भी (सहस्त्र स्यागने) हजारसे अधिक (श्रेणिम्) रागपंक्ति को प्राप्त होते है क्योंकि विषय है अतः अनन्त है। "अनन्तं वैमनः" यह श्रुति से जाना जाता है (मदच्युत) यह उदारावस्था है (कृशनावत) थोड़ा सा खैंचा हुआ है यह तनु अवस्था है (अत्यान्) यह प्रसुप्त विच्छिन्न अवस्था देखायी है यह चारों को (सर्वान्) सब ओरसे (कक्षिवन्त) ऋषि ने (उदमृक्षत्त) पोंछते भये कैसे धूली रेखा को हाथसे मेटा दिया जाता है वैसे (यतवश्राः) क्योंकि इन्द्रियाश्व रूप अश्व पर अर्थात् इनके वशीभूत नहीं हुवे (इन्द्रिय) निमुक्त होकर मनो मात्रा वस्थासे अर्थात् योगी का मन सदाके लिये वश होता है जैसे स्वप्न में देखी हुई वस्तुकी समान अन्नमय प्राणमयका अनुसंधान न करता हुआ अर्थात् दोनोंको आनन्द-मय कोशमें स्थापित कर देता है ॥ २० ॥

उपोपमे परामृशमामेदभ्राणि मन्यथाः॥सर्वा हमस्मि रोमशा गंधारीणामिवाविका ॥ २७ ॥

एवं ऋषि कक्षीवानने श्रीदशरथ राजाके पुत्र प्रदानमें संकल्प कियाथा कि मैं यज्ञ द्वारापुत्र दूँगा श्रीमहाराजने अपनी भार्या कौशल्यादि के प्रति व्रतधारणमें संदेह किया कि यह व्रत पूरा करसकेगी की नही ऐसा संदेह हुआतब श्रीकौशल्याजी कहती हैं (उपोप में) वार पूर्ति के लिये उपसर्गका द्वित्य है। (मे) मेरे पासमें विचार करें कि यह दृढ़ व्रत वाली है कि नही क्योंकि मेरे लक्षणों से स्वयं आप विचार कर लेंगे (मे) मेरा व्रत (दभ्राणि) अर्धस्थित अर्थात् खण्डित ही करेंगी ऐसा हमको आप न जाने अर्थात् मैं समस्त व्रत कर चुकी हूं जिस

हेतुसे मैंने (सर्वा) समस्त (रोमशा) रोमको अर्थात् पापों को शात प्रति हटादिय हैं। जैसे (रोमशा) रोमवाली वड़वा घोड़ी स्वशरीर डोला कर रोम अथवा धूली को गिरा देती है वैसेही मुझको जानें यह श्रुतिभी गमक है "अश्वा इव-रोमाणि विधूय पापम् यह प्रसिद्ध दृष्टान्त है। जैसे (गंधारीणाम्) गंधार देशकी भेंड़ी वहुलोम वाली होती है। भेंड़ पालनेवाले ने लोम शातित् अर्थात् काटते रूप क्रिया करता है वैसेही मैं हूं। यहां पर कई यह कहता है कि रोमशा पदसे रोमवाली कौशल्या थी यह कथन विगीत अर्थात् निंद-नीय होनेसे उपेक्ष्य है। सर्वास्ता रोमशाः कृधि,, यहां पर और क्या "अपालामिन्द्रत्रिपूत्वं कृणोः सूर्यत्वंच मित्य नं तरमन्त्रेऽपालायाः त्रिः शोधनेन सूर्यसमत्वमकरोः,, यह मंत्र में रोमशा और अपाला पदसे यही जाना गया कि भेंडका रोमको अपालाम् पालन करनेवाले को अर्थात् जैसे पालक रोम काटकरशुद्ध कर लेता है और सूर्य जैसे अपने किरण द्वारा सब वस्तुओं को शुद्ध करता है वैसेही मैं व्रत द्वारा अर्थात् परम सतीत्व से शुद्ध हूं यह सत्य कथन है। भेंड़ पालक वर्ष में तीन बार लोम छेदन करता है। तैसे मैं भी समस्त व्रत से शुद्ध हूँ जैसे कठिन भूमि आकर्षण से को-मलकीजाती है तब बीज प्ररोहित अर्थात् उगता है वैसेही हम शोधन करवाय कर दीप्त मति करो अर्थात् परीक्षा करो। पूर्वोक्त जो दो मंत्रोंसे यही प्रतीत होता है वही यहांभी ग्रहण

के योग्य हैं (रोमशा अप्रातिपदिक संज्ञा है। रोम अस्ति यस्यां सा रोमशा ऐसे विग्रह करनेसे भी रोमशा हो जाय गा रोमशब्दसे श प्रत्यय होगा टाप होकर दीर्घ होगा रोमशा बन जायगा तब अव्युत्पन्न मानना व्यर्थ है क्योंकि अवान्तर पद रोम है ॥ अध्यात्म पक्षमें बुद्धि की मलिनता होनेपर बाह्ये-न्द्रियों की वियुक्त चांचल्यसे मन स्वप्नमें महा अनर्थकको रचता है जब मन शुद्ध होने से अस्मिता मात्र में अवस्थित रहता है; अर्थात् मैं हूँ यही ज्ञान रहता है क्यों कि सर्व संकल्प के उपराम से मनोमय कोश का भाव रहता है अतः मैं करता हूँ इस अभिमान का अभाव होने से मनोमय कोश आनन्दमयको श में लीन हो जाता है। कुशला मंगल रूपा एव कौशल्या तत्त्व-की प्रति पत्ति ज्ञान के योग्य होता है यर्थाथ कौशल्या पद से कहा गया। वही यहा पर रोमशा पद स गृहीत है कौशल्या का दूसरा नाम रोमशा है। तैसे ऋष्य शृंग का दूसरा नाम कक्षी वान है। इसी तरह से उन उन नियोग संबन्ध के अनु ष्ठान न ज्ञान वश से उसने यम् जान लेना चाहिये।२१॥

महां ऋषिर्देवजो देवजूतो अस्तभ्नात्सि घुमर्णव नृचक्षाः ॥ विश्वामित्रो यदवहत्सुदास-मप्रियायतकुशिकेभिरिन्द्रः ॥ २२ ॥

वह इस प्रकारहै श्रीरामभद्रादि चार प्रभुका जन्मवर्णित है क्योंकि वह काक पक्ष धर अर्थात् लौटी हुइ केश अर्थात् अलौकिक शोभायुक्त होनेपर हो यज्ञ काविघ्न कारी के हटाने के लिये दोनों श्रीप्रभुको मांगनेके लिये श्री महाराज के प्रति

विश्वामित्रजी आ पधारे यह कथा सूचक मंत्र कहा जाता है (महान्) महान् पूज्यपाद ऋषि अन्तर्यामी नारायण (देवजः) श्रीदशरथ महाराज से आविर्भूत हुए (देव जूतः) देवा चत्वार भ्राता रूप में अथवा इन्द्रियगण (जूत) का अर्थ आज्ञा देने वाला होनेसे देवजूत कहा जाता है (सिन्धु वहनेवाली (अर्णवम्) समुद्रको मिलती है अर्थात् यावतनदी है वह समुद्रमें प्राप्त होती है। मनुष्योंको दया भावसे चष्टे का अर्थ देखनेसे नृचक्षा कहा जाता है अथवा इन्द्रियों को देखनेवाले। 'चक्षुषश्चक्षु' यह श्रुति जाना जाता है। सुदास का दूसरा नाम पैजवनको वशिष्ठजी अभिषेचन कराकर राजसिंहासनपर बैठाये अतःसुदास नामराजाका हुआ मुख्याचार्य वशिष्ठजी ब्राह्मणों से यज्ञ करवाए अतः सुदास का ग्रहण नहीं है क्योंकि श्रीरामजी का जन्म बोधक श्रुतिभी है। सुदासगोत्रमें श्रीरामजी को विश्वामित्र अपने यज्ञरक्षार्थ बोला ले आये थे अतः (यज्ञ वाटं) यज्ञशाला को प्राप्त हुए अलोकिक अचिन्त्य शक्तिरूप कर्मने इन्द्र श्रीराम कुशिक वंशी विश्वामित्र (अप्रियायत) विघ्न रहित यज्ञमें हवी को भोजन करूंगा यह हर्षको प्राप्त हुवे। आगे अध्यात्मपक्षमें विश्वामित्र नाम स्थाने जीव वह आनन्द मय ब्रह्म को साक्षात्कार करके अपने आत्मा को परम कृतार्थ समझते हैं और यज्ञादि कर्मको गौण कर्म समझते हैं 'पुच्छं ब्रह्म' अर्थात् चिन्मय परात्पर तम श्रीरामको प्राप्त हुवे। अतः कौशिक ब्रह्मनिष्ठों में परम ब्रह्मनिष्ठ हे इन्द्र श्रीराम अतिप्रियायत है अर्थात् यज्ञ पूर्ण करनेवाले है। जिसका आत्मा आत्म ज्ञान है वही सत्य है यह श्रुति कथन है। 'देवानां आत्मभोवम्' अर्थात् मुनियों

का आत्मभाव क्या है श्रीरामोपासना ही ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है उन महर्षियोंका प्रियतम श्रीराम होते हैं यह भाव है। इसी कारणसे आनन्द मय सच्चिदानन्द श्रीराममें लीन रहते हैं। मुमुक्षु ओंके आत्मा को अर्थात उपास्यको न जानके जो मनुष्य कर्म करता है वह कर्म निष्फल है ऐसे समझ के श्रीरामजीके प्रति विश्वामित्रागमन से सूचित होता है। और इसी ज्ञानको श्रुति देवी कहती है और माध्यन्दिन पाठ में कहा है कि "तप स्तप्यते, बहुत जन्म तक श्रीरामोपासना करते करते अन्त में श्रीरामरूप होताहैं। यहां भी समुद्रका रोकना जाना जाताहैं।

"सौम्य (मधु)मिठा कुशिकवं शाज (विपिाध्वं) पित्रे" "योवा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिं ल्लोके जुहोति यजति ददाति ॥ ४ ॥

राज वृत्रं मारीच सुबाहु प्राक् पूर्वादिक् अपाक् पश्चिमदिक् उदक् उत्तर दिक् इन दिशोंसे आये हुवेको उंधन मारे थे। सोमपानका अभ्यनुज्ञान कथासे अर्थात् सर्वदेशमें रहा हुआ राक्षसोंको मारेंगे यह समस्त मंत्र ज्ञानसे कहा जाता है जब यज्ञ भूमिमें राक्षस मारे गए पीछे से विश्वामित्र से बला अति बला नामकी विद्याग्रहण किये अतः समस्त मंत्र श्रीराममें संगत हुआ इसी प्रकारसे अन्य भी (लिंग) चिन्ह विशेष रूपसे प्राप्त हैं यह मंत्र से जाना जाता है हठसे अथवा आग्रह से नही किन्तु (चिन्ह) लक्षणोंसे जाना जाता है ॥ २२ ॥

पूर्वापरंचरतौ माययैतौशिशू क्रीडन्तौपरि

पातो अध्वरम् ॥ विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतून न्यो विदधज्जायते पुनः ॥२३॥

ततो निर्विवाद कथनसे यज्ञरक्षार्थ उपस्थित दोनों श्री-प्रभु सूर्यदेव सावित्री देवी अर्थात् अपने पूर्वज जानके दोनों दंपति की स्तुति करते हैं। पूर्वा पर देखनेमें बालरूप दोनों प्रभु आगे पीछे अर्थात् आगे श्रीरामजी उनके पीछे श्री लखनलाल जी श्रीरामपद चिन्हों कोबचाते हुवे चलते है (मायया) अपनी इच्छा से शिशु रूप होकर (क्रीडन्तौ) खेल करते हुवे (अध्व-रम्) यज्ञ भूमिको (परियातः) प्राप्त हुवे दोनोंमें से एक श्रीराम सर्वव्यापक सूर्य की तरह समस्त भुवन रूप क्षेत्र शरीरों को (आचष्ट) हस्तामलककी तरह देखते हैं क्योंकि अपारव र्तनीय अखण्ड ज्ञानरूपज्योति स्वरूप होनेसे (अन्यो) दूसरा श्रीलक्ष्मणजी कैसे हैं कि (ऋतुन्) तिथीरूप एक दो तीनादिके जनक क्रमसे वसंतादि ऋतुओंका चन्द्रकी तरह अर्थात् जैसे एकम दूज तीज चन्द्रसे बढ़ता है वैसे ऋतु शब्दसे कथित कालसे जगत् बढ़ता है अर्थात् जगतको धारण करता हुआ और बनाता हुआ बारंबार श्रीलक्ष्मणजी स्थित होते है। अध्यात्मपक्ष में श्रुति से और युक्तिसे अध्यारोप अपवाद से प्रतिपन्नसिद्ध वस्तुका सम्पादनके लिये अभ्यास को इच्छा करते हुवे बारंबार अभ्यासके अवलम्बनसे सूत्रात्मा और अन्तर्यामीरूपसे (उपन्य-स्तौ) धारणकिये यद्यपि यज्ञ के प्रति गमन बलराम औरश्रीकृष्ण जीकाभी है शिशूपनमेंही देखा गया है। तथापि इहां से प्रारम्भ जबतक अध्याय की समाप्ति न हो तब तक विवाहका चिन्ह "गृभ्णामि तेसौ भगत्वाय हस्तम्" इत्यादि

इच्छाकृपादयादयलक्ष्म्यादिमायाशब्दके अर्थ हैं। इति पं. राघवेन्द्र सि. कि.

"उदीर्ष्वातः पतिव्रती ह्येषा स ंजायां पत्या स ंसृज" सौभगके लिये आपके हस्त कमल को मैं ग्रहण करताहूं और दूसरी श्रुति भी इसी कथन को कहती है। यह पतिवाली हैं इस जाया को पति के साथ सृजा है (उदीर्ष्वातः) अर्थात् इनके साथ इनका नित्य संबन्ध है । भार्याहर्तुः) भार्याचोर रावण का प्रार्थना रूप लिंग चिन्ह से प्राप्त भार्या के हरण को पुनः श्रीजनकजाजी को "पत्नीमग्निरदात्,, अग्नि देव श्री रामजी को दिये हैं फिर प्राप्त होने पर यह कथा श्रीराम ही में संगत होती है अतः यह वताने वाले मंत्र श्रीराम पर है ॥ २३॥

परादेहि　शामूल्यंब्रह्मभ्योविभजावसु
कृत्यैषापद्वती भूत्वा जाया विशतेपतिम ॥२४॥

यज्ञ में प्रस्थित नाम उपस्थित दोनों श्रीप्रभु पुनः आगे आती हुयी ताड़का नाम की राक्षसी को देख कर ऋषि कहने लगे कि हे दोनों राज कुमार विजय श्री अथवा गृह श्री प्राप्त के लिये (गच्छतः) पधारिये यह अच्छा मुहूर्त है क्यों कि इस-को सूर्यास्त न हो इससे पहले निर्विचार शस्त्रसे मारिये (परा) दया रूप दान से मारने योग्य अर्थात् पहले यह गंधर्वी थी पुनः स्व स्वरूप को प्राप्त हो। क्योंकि (शामूल्यम्) इसका इस समय में अमंगल रूप है। यह तारका रूप अर्थात् देखने में स्त्री रूपा है परन्तु इसका काम महा शौर्य रूपा है अतः दूर से मारिये इसके मारने से (ब्रह्मभ्यो) देवगणों के लिये भाग अर्थात् यज्ञ रूप भाग मिलेगा (देहि) इसके द्वारा देवों को भाग नहीं मिलता है अतः आप भाग दो। अथवा इसके मार-

ने में पाप समझते हैं तो (वसु) पश्चात् ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण को दीजिये। क्योंकि जिससे यह (कृत्या) ताटका आप श्री के हस्त कमल से बध कामना की इच्छा से संमुख (पद्वती) पाद से दौड़ती आ रही है कैसे आ रही है मानो सती अपने पति के साथ होकर राजा पति को अर्चना गृहपति को (विशते) संमुख आ रही है। ऐसे कहने पर श्रीरामजीने ताटका को मारे और विवाह से पहले ब्राह्मणों को बहु धनों को दिये यह ऊपर कह आये हैं। अध्यात्मपक्ष में (शामूल्य) का अर्थ तृष्णा है वही कर्म उपासना और मति (ज्ञान) इन तीनों का बन्ध का कारन है अतः बैराग्य द्वारा सब का त्याग कहा है ॥ २४ ॥

उप प्रेत कुशिका चेतयध्वमश्वं राये प्रमुंचता सुदासः राजा बृत्रं जंघनत्प्रागपागुदगथाय जाते वर आपृथिव्याः ॥ २५ ॥

इस प्रकार ताटका को मारकर यज्ञशाला को आकर दोनों प्रभु बोले। हे कौशिक और अनुयायियो (उप प्रेत) मेरे पास विशेष रूप से आइये (चेतयध्वम्) आप सब सावधान हो इये (राये) धर्म रूप समृद्धि के लिये (सुदास) सुदास गोत्रोत्पन्न श्रीरामकी आज्ञा से (अश्वम्) यज्ञसाधन विशेष को (प्रमुञ्चतः) छोड़िये (राजा) श्रीराम (बृत्रम्) विघ्नकारी असुरों को (जघानत्) मारते हैं (प्रागपागुदक्) पूर्व पच्छिम और उत्तर दिशाओं से आए हुये स्थित राक्षस को मारे (अथ) इसके बाद (आपृथिव्या) पृथिवी की श्रेष्ठ स्थान यज्ञ शाला में (आय जाते) समिप संबाद को करते हैं (यजध्वम्) यह आज्ञा दिये। यहां पर वृत्र शब्द से मारीच सुबाहु का ग्रहण

है ॥ अध्यात्मपक्षमें कर्तृत्वाभिमान फल का अभिसंहनन है और दोनों को मार कर श्रीरामभक्तों का यश को प्राप्त होते हैं यह भाव गर्भित है मंत्र में अश्व पद से बोधित को प्ररोचनार्थ अर्थात् फलप्रद है कहने का यह भाव है कि अश्व नहीं छोड़ा गया था क्योंकि राजसूय यज्ञ नही है यह तो निष्काम यज्ञ है अतः ॥ २५ ॥

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे करदिन्नः सुराधसः ॥ २६ ॥

इस तरह उक्ति पूर्वक कह कर अब साधन को दिखाते हैं। यज्ञमें प्रधान साधन रूप श्रीराममें विश्वामित्रजी के अनुग्रह को कहा जाता है (विश्वामित्राः) ऋषयः (ब्रह्म) महती विद्या बला अतिबला नाम विद्या को (इन्द्राय) श्रीरामजीके लिये (अरासतः) दिये (वज्रिणे) महामणि धारी अर्थात् वैदूर्यमणि चिन्तामणि और कौस्तुभमणि इत्यादि धारी श्रीराम जी के लिये दो विद्या दी वह श्रीराम कैसे हैं (ब्रह्म) बड़ी विद्या को जानने वाले हैं वह (नः) हम सबों को (सुराधसः) सुन्दर सिद्धि युक्त (करत्) बनावे ॥ अध्यात्मपक्षमें तृष्णा त्यांग अर्थात् फलांशको त्याग कर यज्ञेनिष्काम यज्ञ के अनुष्ठित साधन होनेपर यत्किञ्चित् चित्तकी शुद्धि होनेपर विश्वामित्र जीव समस्त बन्धनकाट के कर्मांग को और तत्तत् देवों की उपासना को प्रत्यग आत्मा अपने से भेदरहित श्रीराम जी के सन्मुख हो करके कार्य को करता है जैसे कहा है ॥ अहंक्रतुरहंयज्ञः, यह उक्त प्रकार से ॥ २६ ॥

तनूषनो वलामन्द्रा लुत्सुनः बलन्तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि वलदा असि ॥ २७ ॥

यहां पर यह बला मंत्र का निर्देश है।

तेजोऽसितेजो मयिधेहि वलमसि बलं मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि,,

इस वाक्य से जाना गया कि सर्वज्ञ श्रीरामजी इनगुणों युक्त हैं अत मेरे हृदय में निवास (अनलुत्सु) मेरे समस्त जीविका मात्र में यह गुण धारण करें (तोकायम्) स्त्री आदि में उपलक्षण है (तो काय) शब्द से यहज्ञात हुवा कि स्त्री हो अथवा पुरुष हो यह दोनों में साधारण अपत्य बोधक अर्थात् संतान बोधक शब्द है (तनयाय) पुत्रके लिये (जीवसे) जीने के लिये शेष बचन स्पष्ट है अर्थात (त्वम्) आप (बलदाअसि) बल के देने वाले हो। मेरे संबन्धियों के दृढ होने पर जब स्वस्थ चित्त होजायगा तब बाहरके शत्रु और भीतर के शत्रुओं को जीतने के लिये समर्थ होजायगा यह भाव है। कहने का तात्प र्य यह है कि बाह्येन्द्रिय जन्य ज्ञान रूप शत्रु अभ्यन्तर जन्य ज्ञान रूप शत्रु जीता जावे तब आत्मसुख होगा अन्यथा नहीं ॥ २७॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्ययाच्छ्रेष्ठा- भिर्मघवन् शूरजिन्व ॥ यानोद्वेष्ट्य धरः सप- दीष्टयमुद्विष्मस्तमुप्राणोजहातु ॥ २८ ॥

बला विद्यानिरूपणानन्तर अतिबला को कहा जाता है। हे (इन्द्र) श्रीराम (ऊतिभिः) बहुत ऐश्वर्यों से (नः) हम सबों को (अद्य) आज (जिन्व) तृप्ति करो (याच्छ्रेष्ठाभिः) यात्का अर्थ चलते हुये ब्रह्मादिकों के अर्थात् ऋषि ब्राह्मणों के मध्य में (श्रेष्ठाभिः) का अर्थ प्रसिद्ध अर्थात् आराध्य रूप होने से (हे) (मघवन्) शूर इहां पर मघवन् का अर्थ शूर है। क्योंकि श्रीरामजी का पराक्रम ताटका बध से प्रत्यक्ष होगया है अतः (तास्च) वह विद्या ही (ऊति) विभूतियों से कहा गया है (या) विद्या (नोस्मान्) हम सबों को (द्वेष्टि स) वह (अधर) नीचे होकर पदीष्ट, गीरे (यमु) जिसको (द्विष्म) हम सब द्वेषकरें (तमु) उसके भी (प्राण) जीवन को (जहातु) त्याग करे। यहां बला का स्वरूप ग्रहण मात्र हो तब शरीर सामर्थ्य से इष्टि की सिद्धि होती है। और अतिबला का प्रभाव मात्र से ही मन केइष्ट सिद्धि होती है अर्थात् संकल्प मात्र से। अध्यात्मपक्ष में आसनादि के दृढ हेतुओं से आरोग्यादिकहोहोता है और चित्तकी एकाग्रता रूप हेतुओं से प्रत्यक् आत्मा को (प्रावण्य) नवा देती है अर्थात् आत्मा में स्थित कर देती है तब ईश्वराराधनका योग्यता से ग्रहण किया जाता है। ऊतिभिः) ऐश्वर्यों से युक्त होता है। यच्छ्रद्रार्थ का अर्थ पाप से निवर्तित उपप्रेत इस मंत्र से लेकर नीचे चार मंत्र तक महा ऋषि का प्रघट्टक प्रकरण में स्थित है॥ २८॥

अरंदासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः अचेतयदचितो देवो अर्योगृत्सं-राये कवि तरोजुनाति ॥ २९ ॥

इस प्रकार विद्या को प्राप्त करके गौतमाश्रम को जा करके अहल्या का उद्धार करने पर गौतमजी श्रीरामजी की स्तुति करते हैं (अरं दास) इति (अहंमीढुषे) आप श्रीराम के द्वारा मेरी भार्या प्रदान से मेरा मनोरथ पूर्ण करने के कारण (देवाय) राजा श्रीरामके लिये (दासोन) दास के समान मै दास हूं (अरंकराणि) दिव्य गन्ध पुष्पादि से अलंकार करूं अर्थात् षोडशोपचार से पूजन करूं क्योंकि आप हम से पूजनीय हैं अतः। (भूर्णये) बहु प्रदान के लिय (अनागाः) दोष रहित जिसमे (अर्यः) आप मेरे स्वामी हैं देवो प्रकाशमान हो (अचितः) यहां पर कर्म में षष्ठी विभक्ति है चेतनारहित पाषाण भूत जाया को (अचेतयत्) चेतन वाली किये यह सब महिमा आप श्री की है इस लिये आप मेरे सदृश दास को (गृत्सम्) स्वीकार करें। प्राणगृत्स है गृत्स का अर्थ प्राण वाली बुद्धि मती स्त्री देह को (राये) कर्म रूप समृद्धि के लिये अर्थात् इन जाया की साथ लौकिक तथा पारलौकिक शुभ कर्म हो सकता है (जुनाति) अनुसरति नाम स्वीकार होता हैं (कवितरः) दक्ष शिक्षादि जो सूक्ष्मदर्शी है उनमें से आप अत्यन्तश्रेष्ठ सूक्ष्मदर्शी हैं। अध्यात्मपक्ष में अहल्या धर्म चारिणी रूप शुभ वासना हैं धर्म रूप गौतम है। धर्माभास पाखण्ड रूप धर्म के नाशक आपइन्द्र हैं (चेतन का तिरस्कार होने पर श्रीराम के आश्रय से फिर धर्म सहचारिणी को मैं प्राप्त हुवा। यहां भी पूर्व मंत्र से हैं कि बड़ा भाई को छोटा भाई उपराम समीप होकर दोनों भाई साहचर्य को प्राप्त हुवे। अर्य आप स्वामी अचित जड़वस्तु को (अचेतयत्) चेतन किये। यह चिन्हद्वय से सर्व रक्षक श्रीराघवजी ही इस मंत्र से प्रतिपादित होते हैं॥ २६॥

बल विज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ॥ अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ३० ॥

अथ महर्षि गौतम जी के स्तुति करने के बाद स्वयंवर को देखने के इच्छुक श्रीराम जी को देवताओं का भेजा हुआ रथ और दिव्य आयुध उपस्थित हुआ इसका कहा जाता है (बल विज्ञाय) बलके विषय में जानने के लिये योग्य परीक्षणीय आप हो। त्र्यम्बक के धनुष का (ज्या) तांत के सहित धनुष पर चढ़ा देने पर कन्या को मैं दूंगा इस आशय से श्रीजनक जी ने कहा (स्थविरः) बड़ा (प्रवीरः) अति शूर (सहस्वान्) मानस बलवान् अर्थात् संकल्पमात्र से बल की वृद्धिवाले आप हो (वाजी) वाज वेग का नाम है और शरीर संबंधि बल वाले हो (सहमानः) शत्रुओं की सेना का बल सहते हुये उनको नाशकर देते हो (अभि वीरः) सब ओरसे भाईओं से संयुक्त हो। इससे यह ज्ञात होता है कि इस काल में श्रीजनकपुर में समस्त भाईयों का सामीप्य है यह सूचित हुवा। अभिसत्वा) सब तरह से आप बलवान् हैं (सहोजाः) आप में मन के संकल्प मात्र से बल का आविर्भाव होता है। नतु कर्मणा जातः) कर्मसे न उत्पन्न होता अर्थात् स्निग्ध पदार्थ के सेवनसे और मल्लयुद्ध से नही होता है अतः संकल्प मात्र से होता है। ऐसे होते हुये हे इन्द्र श्रीरामभद्र (जैत्रम्) विजय करने वाले रथमातिष्ठ विजयरूप रथ पर विराजिये (गोवित्) भूको प्राप्त करके पालन करनेसे गोवित् कहा जाता कि राजा है ॥ अध्यात्म पक्ष में धर्मादि अर्थात् शमदम उपरत तितीक्षादि दृढ़ होने

से मन की कान्ति जीती जाती है मेरा चित्त रूप रथ पर बैठे आप उन से धर्मादि का भी रक्षण तहां पर स्थान पद को प्राप्त होगा यह भाव है ॥ ३० ॥

चमूषच्छ्येनः शकुनोविभृत्वागोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रत् ॥ अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३१ ॥

(चमूः) शत्रु सेना को जो नाश करे वह चमूषत् कहाता है (श्येनः) शकुन जीव और ईश यह दो पक्षी है। इनके मध्य में बलवान पक्षी रूप ईश्वर है (विभृत्वा) विश्वधारक और पोषक (गोविन्दु) पृथ्वी को प्राप्त करने से गोविन्दु कहा जाता है बराह अवतार में प्राप्त होना है (गोविन्दु वैदिक होने से उकारान्त है (द्रप्सः) दूध मक्खन जैसे पिघलता है अर्थात् सार है वैसे ब्रह्मांड का सार श्रीरामजी है (आयुधानि) धनुष बाणादिको (विभ्रत्) धारण करते हुवे हो (अपामूं) समुद्र को सचमान जाते हुवे रावण बध के लिये यह विशेष कथन है (तुरीयम् धाम) का अर्थ विश्व तैजस और प्राज्ञ की अपेक्षा से चतुर्थ जो तुरीयावस्था है क्योंकि अखण्ड ज्ञान हैं और ज्योतियों का ज्योति है (महिषो) महान् है अतः सब से आराधित होते हुवे (विवक्ति) अलग अलग करते है। शुद्ध ब्रह्म ही हम सबको वीरवेषेण अर्थात् राजकुमार वेष से रक्षक बने यह भाव है ॥ ३१ ॥

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मयारेतः संजग्मानो निषिञ्चत् ॥ स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म

देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ३२ ॥

जिस प्रयोजन के लिए राजा श्री जनकजी बल परीक्षा करते हैं उस श्री सीताजी की उत्पत्ति को उपबृंहण रूप भविष्य पुराण के आधार पर कहा जाता है (पिता) रावण (यत्) जब (स्वां दुहितरम्) अपनी पुत्री को उत्पन्न मात्र होने पर (ज्योतिषी के वचन प्रमाण से यह पुत्री तुम्हारे कुल का नाश करने वाली होगी (अधि) अधिक (स्कन्) स्कन्नवान् नाश करने वाली इसलिये इस कन्या को दूर में फेंक आवो। कुत्रेत्यत कहां छोड़ा जावे कहा जाता है (क्षमया) पृथवी में (सं जग्मानः) संगत अर्थात् गाड़ दो (रेत) दुहि तृ रूप को (निषिञ्चत्) निषिक्तवान् अर्थात् भूमि की उदर में अर्थात् भूमि खोदकर उस को गाड़ दो। तहां भी (स्वाध्यः) परिवार के सहित रावण का वध से सुन्दर कल्याण होगा क्योंकि भूमि निवासी तथा स्वर्ग-वासी यह दोनों ध्यान करते अर्थात् ईश्वर से प्रार्थना करते हैं (स्वाध्या,) इन्द्रादि देव मनाते हैं। तज्ज नकार्थं गाडी हुई कन्या को जीने के लिये (व्रत) चैतन्य अर्थात् चेतनता बनी रहे (अजनयन) कैसे रखे जैसे मातृ गर्भ में जीवित बालक रहता है वैसेही पृथिवीगर्भमें भी उसको रक्षा करते हुवे। जैसे प्राणा-याम युक्त पुरुष नहीं मरता है वैसे वह न मरे वास्तोष्पतिम्) स्थान का रक्षक को गृहपति को (व्रतपां) व्रतपति को अर्थात् यजमान को उदेश्य करके (निरतक्षन) यज्ञ करनेके लिये स्थान को हल से जोता जाता है अर्थात् राजा रानी हलग्राही बनें यह विधि है। उससे कन्या स्थानपति जनकको प्राप्त हुई। अध्या-त्मपक्ष में पिता कामदेव है दुहिता श्रद्धा है यदि ज्ञान से संयुक्त करें तब परिवार के सहित काम को नाश करें उस सात्विक रूप श्रद्धा को धारण करें और राजसकाम से दूरमें त्याग करें

यज्ञादि सत्कर्म करने वाले को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥

अर्वाची सुभगे भव सीते वंदामहेत्वायथा नः सुभगा ससि यथा नः सुफलाससि ॥ ३३ ॥

इस प्रकार आविर्भूत श्री जनकजाजी को शमदमादि सम्पन्न देव गण प्रार्थना करते है हे (सुभगे) हे (सीते) श्री-सीता शब्द की व्याख्या यह है स्यति नाम समस्त राक्षसों का अन्त नाश को करती अतः श्रीसीता नाम हुवा यहां पर कर्ता मेंक्त प्रत्यय हुवा है वैदिक शब्द होने से (सीयते असौ सीता) ऐसा कर्म में क्तप्रत्यय नहीं है यहां पर कर्ता में है। हल का फाल में मुख्य अर्थ का अभाव है क्योंकि हल फाल किसका नाश या उत्पत्ति करेगा। अतः सीता महादेवी का आविर्भाव का कारण होने से फाल भी सीता शब्द से कहा जाता है- (सीते त्वां) आप श्री जी को (वंदामहे) स्तुति और नमस्कार हम सब करते हैं। यथा नः जैसे हम सबों को (सुभगा) सुखा रोग ऐश्वर्य दान से (सुफला) प्रतिपक्ष के नाश से (असि) देदीप्यमान हो तैसे (अर्वाची) अनुकूल होवो ॥ ३३ ॥

इन्द्र सीतां निगृहेणातु तां पूषा नु यच्छतु॥ सा नः पयस्वती दुहामुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥ ३४॥

यह इन्द्र देदीप्यमान श्रीराम श्रीसीताजी को (निगृहणातु) ग्रहण करे क्योंकि पराक्रम ही शुल्कां मूल्य से उन को अपने आधीन करें (पोषण लालन करने से (पूषा) श्रीजनक जी का वाचक है वह उनको पीछे में श्रीरामजी के लिये (यच्छतु) देवें (सा) वह श्रीसीता (नः) हम सबांको (दुहाम्) पूर्ण

ऐश्वर्य देवे वाली हो (समा) का अर्थ बहुत वर्ष है (पयस्वती) बहुत अन्नों को देनेवाली होवो । अध्यात्मपक्ष में इन्द्र का अर्थ शास्त्र का अर्थ से ज्ञान वान है। सात्विकश्रद्धा रूपा सीता हैं (पूषा) का अर्थ धर्म है। पया का अर्थ योग सिद्धि है ॥ ३४ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्र बाहुं जयन्तमज्म-प्रमृणन्तमोजसा ॥ इमं स जाता अनुवीर यध्व-मिन्द्रं सखायो अनुसंर भध्वम् ॥ ३५ ॥

ततः स्वयंवर शाला में सब राजाओं का प्रवेश होने पर यह देव वाक्य (गोत्रभिदम्) गोत्रहिमालय पर्वत के (तद्रूपं) सदृश शिवधनुष देखा जाता है त्रिपुरवध में यह श्लोक कहे कि

"रथक्षोणी यन्ता शत धृतिरगेद्रोधनु,,

पृथिवी रथ हुई शतधृति ब्रह्मा जी यन्त रथ हांकने वाले हुवे उस धनुष के स्मरण से जाना जाता है कि तद्भिद गोत्र-भिद गोत्र पर्वत के समान धनुष है उसको तोड़ने वाले श्रीराम ही हैं यहां पर संहिता में प्रपूर्व मन्त्रमें अर्थात् बीच में मंत्र छोड़ कर पहला मंत्र यह प्रपूर्व मंत्र कहा जाता है इस मंत्र में रक्षोहा पद है राक्षसों का नाशक श्रीरामही है और पूर्व मंत्र में बल विज्ञाप पद है यह भी श्रीराम ही जी का ज्ञापक है क्योंकि श्रीजनक जी ने बल परीक्षा करके अपने पुत्री प्रदान की है गोत्र भित् प्रमाण से जाना जाता है कि यहां भी गोत्रभित्पद का रूद्र धनुभित् श्रीराम ही का बाचक है। पर्वत पक्ष काटने वाले इन्द्र का नही है (वज्रबाहुम्) अत्यन्त हैं बल जिसके भुजा में यह भी श्रीराम जी का विशेषण है (अज्म) स्वीकार करने

यांग्या गृहाभिधं का अर्थ श्री जनकजा जी को अपने द्रव्य जान-कर (जयन्तम्) जीते (ओजसा) बल से (प्रमृणन्तम्) धनुष को खण्डन किये) इदृशा श्रीराम जी को (सजाताः) समान बल युक्त तीनो भाई है अथवा तीनों साथ उत्पन्न हुये। इन श्रीराम जी को देखा कर (बीरयध्वम्) विक्रम शाली होवा (अनुसखाय) पीछे से होने वाले जा भाई इन के सदृश होने वाले वानर भाई हैं (अनुसंरभध्वम्) इन सबों को भाई भाव से आदर करो क्योंकि शत्रुओं का कोप होने पर पूर्ण सहा-यक है। अध्यात्मपक्ष में गोत्र रूप पर्वत उनमें स्थित काम गण देखी जाती है। उसको भी तुच्छ करके स्थित (गोत्रभिदं नाम तीव्र वैराग्य वाले श्रद्धा को आत्मा का स्वीकार करते हुवे) (सजाताः) धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादि रूप सखा का नाम शम दमादि है। इस इन्द्र श्रीराम जी को भूमि की प्राप्ति करके जीव भाव अर्थात् अपने में मनुष्य भाव स्वीकार किये ॥ ३५ ॥

सुमंगलीरियं बधूरिमां समेत पश्यत सौ-भाग्यमस्मै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन ॥ ३६ ॥

इस प्रकार धनुष टूट जाने पर श्रीजनक राज अपनी कुमारी जी को बोलवा कर कहे यह (वधू) सुमंगली है (दत्त्वा य) दे करके (अस्तं) स्वगृह को (परेतन) लौटकर जाते हुवे (इमां) इस को साथ (पश्यत) देखो (अस्मै) इस के लिये (सौभाग्य) सुन्दर भाग्य प्राप्त है ॥ आध्यात्मपक्ष में वधू श्रद्धा है उसकी सुभाग्य जब तक विदेह कैवल्य अर्थात् जीवन्मुक्त दशा को बाध से वियोगन हो (अस्तम्) सर्वाधि-ष्ठान होने वाले ब्रह्म है ॥ ३७ ॥

गृभ्णामितेसौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टि-र्यथासः ॥ भगोऽर्यमा सवितापुरंधिर्मह्यंत्वाऽदु-र्गार्हपत्याय देवाः ॥ ३७ ॥

ततो उसके बाद प्राप्त श्रीजनकजा जी का पाणिग्रहण श्रीरामजी करते हैं (सौभगत्वाय) सुन्दर भाग के लिये (मया) मुझपतिके साथ (जरदष्टिः) जीर्यत्कुच ग्रंथिका अर्थ जीर्णा वस्था पर्यन्त (यथा) जैसे (असः) सुशोभित वैसे (तेहस्तं गृभ्णामि) तुम्हारे हस्त कमलों का मैं ग्रहण करता हूं (भग अर्यमा सविता पुरंधि) इत्यादि देव चार (त्वामह्यम्) तुम को मेरे लिये (अदुः) दिये (गार्हपत्याय) गार्हस्थ्य धर्म अर्थात् संतान के लिये ॥ अध्यात्मपक्ष में जैसे (देवाः बोध का श्रद्धा योग्य को इच्छा करते हैं । इसी तरह बोध होने पर भी कैवल्य मोक्षरूप फल को उत्पन्न करने के लिये श्रद्धा योग को इच्छा करते हैं अक्षर योजना सुख पूर्वक जान लेना यह दो मंत्र एक पूर्व पहले हैं दूसरा नीचे है ॥ ३७ ॥

अयं स्तुतो राजा बंदि बेधा अपश्च विप्र तरतिस्व सेतुः ॥ सब्रदनवितं रेजयत्सो अग्निने मिन्नचक्र मर्वतोरघुद्रुः ॥ ३८ ॥

इस तरह श्रीजनकजा जी को लेकरके श्री अयोध्या के प्रति चलते समय मध्य मार्ग में श्रीराम जी ने परशु राम जी को जीतने पर देवता गण स्तुति करते हुए (अयं) यह स्तुति यह ऋक्च मंत्रों से की गयी (अयंरामो राजा) यह श्रीराम राजा

है (स्तुतः) स्तुति करने योग्य है (बंदि) अवंदि अर्थात् देवों ने अभिवादन किया। क्योंकि (वेधा) ब्रह्मा जी वह कैसे है जगत् के रचने वाले हैं (अपः) समुद्र को नर जाँयगे जल दी वैसे (विपः) द्वितीयार्थ में प्रथमा विभक्ति है (विप्र) परशुराम जी को जीतते हैं जिससे (स्वसेतुः) अपने किये हुवे सेतु जाने के साधन जिसका हैं (सः) वह तैसे। इसका शिलामय पुल प्रसिद्ध विप के ऊपर आपत्ति न आवे तब तक शस्त्र को न धारण किये यह मर्यादा नियत है अपने सेतु ही को उल्लंघन करने से अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन से भार्गवकी हार हुयी है यह राजा कक्षीवान को कहे थे और उन्हों ने श्रीदशरथ जी के लिये वर दिये थे कि समुद्र के जीतने वाले आप का पुत्र होंगे (तं अग्निम्) उस अग्नि को चरु रूप से गर्भ धारण होगा अर्थात् अग्नि ही गर्भ रूप से होगा (रेजयत्) प्रेरितवान् का अर्थ आज्ञा देने वाले तहां पर यह दृष्टान्त हैं (ने मिन्न) यह नमिवाला लोहा का फाल वाला चक्र पहिया को वैसे (अवतः) घोड़ा को अनु पीछे पीछे चक्र चलता है (रघुद्रुः) रघु शीघ्र द्रुः चलने वाले होते हैं। इसी तरह से कक्षीवानादि ऋषियों की प्रेरणा से राजा चलते हैं। यह वृतान्त पहले ही देखाया है। यहां पर जामदग्न्य ब्राह्मणों के मध्य में राजा होने से (सोम) चन्द्र है। दाशरथि क्षत्रियों के मध्य में राजा होने से आदित्य हैं

"सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा" आदि-त्यो वैदेवं क्षत्रम्"

यह दो मंत्रों से पूर्वा पर मंत्रों के उक्तरीति से कार्य और कारण रूप है अतः तस्य जामदग्न्य कार्य का दाशरथि कारण से अभिभव कहा जैसे सूर्य से चन्द्र का अभिभव होता

है। इस्त वाला कि ब्राह्मण और अजात शत्रु क्षत्रिय इन दोनों संवाद दृष्टान्त से जान लेना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण की हार क्षत्रिय की जीत। (यत्त) ज्यों कि श्रीराम बाण से जामदग्न्य के पुण्य लोक का नाश किये वह जगत्कारण के बोध से ब्रह्म से जायमान लौकिक ऐश्वर्य का अर्थ होता है यहां पर को अर्थात् कारण को यह मंत्र है (विप्रस्तरति) जामदग्न्य का जीतना रूप प्रमाण से और शृंगीऋषि आदि के कथन से यह सब मंत्र श्रीराम परक है ॥ ३८ ॥

सद्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ॥ संयन्मित्रावरुणा वृंजउक्थैर्ज्येष्ठेभिर्यमणं वरूथैः ॥ ३९ ॥

(सः) वह श्रीराम राजा (द्विबन्धुः) द्वय हो बन्धु जिसका वह श्रीरामजी हैं अर्थात् शत्रु मित्र समान हैं क्योंकि सर्व व्यापक होने से (अथवा) द्विबन्धु) दो का यह परस्पर विरोध होने पर भी जैसे वशिष्ठ और विश्वामित्र का बन्धु मित्र थे यह दोनों का परस्पर बैर भाव था परन्तु सर्वात्मा होने से दोनों में श्रीराम जी का समभाव था। उन दोनों के भेद कहा जाता है एक (वैतरण) विश्वामित्र दाता थे (दूसरा वशिष्ठ जी (यष्टा) यागादि के कर्ता थे। उन दोनों के विरोध को कहा जाता है (सबर्धुम) गर्भवती दशा में भी वशिष्ठ जी गौ दुहते थे (सबर्धुम) धेनु को दुहते थे कब तक (अस्वम्) जब तक गौ बच्चा न देवे तब तक दुहते थे। जब बच्चा दे देती थी तब दश दिन तक नहीं दुहते थे ॥

"तस्माद्वत्सं जातं दशरात्रं न दुहन्ति"

यह श्रुति प्रमाण है (दुहध्यै) दुहने के लिये। ऐसी वशिष्ठ धेनु को लेने के लिये विश्वामित्र जी इसके बदले में कोटिशः धेनु देने के लिये तैयार थे। परन्तु यागानुरोधी यागके करने वाले वशिष्ठ जी उस गौ को देने केलिये स्वीकार न किये अर्थात् अपनी गौ को न दिये यह कथा पुराण प्रसिद्ध है। यथा क्रमम् इस क्रम को वैतरण नाम विश्वामित्र जी जिसके लिये मित्रा नाम सूर्य और वरुण इन दोनों का पुत्र वशिष्ठ को।

"मित्रा वरुणा योर्दीक्षितयोरूर्वशीमप्सर संदृष्ट्वा वासतो वरेकुंभेरेतोऽयतत्ततो, गस्त्य वशिष्ठावजायेताम्"

मित्रावरुण दीक्षित अर्थात् ज्ञाननिष्ठ हो करके भी उर्वशी अप्सरा को देख करके उन दोनों के वस्त्र से रेत नाम वीर्य श्रेष्ठ घट में गिरा पीछे से अगस्त्य और वशिष्ठ का जन्म हुआ। यह वैदिक प्रसिद्ध कथा है (उक्थैः) अनेक कर्मों से (संवृंजे) हिंसितवान् हटाये वैसे (यष्टा) यागकारी वशिष्ठ जी भी (ज्येष्ठेभिः) अपने योग बल से कोटिशः सेनाओं को उत्पन्न किये (अर्यमणम्) उत्पन्न हुई सेना अर्य नाम स्वामी वशिष्ठ जी को अपना स्वामी मानने लगे। यह अर्थ का मत है (संवृजे) यह पूर्व से अनुषंग किया गया है ॥ ३६ ॥

तद्बन्धुः सूरि दिवितधियंधानाभानेदिष्ठ रपति प्रवेनन् ॥ सानो नाभिः परमास्य वाघा हं तत्पश्चाकतिथश्चि दास ॥ ४० ॥

वह पूर्व मंत्र से कहा हुवा श्रीराम राजा बन्धु हो वंश जिसका वह बन्धु कहा जाता है (नाभानेदिष्टः) नाभानेदिष्ट नाम के ऋषथे (रपति) स्पष्ट वक्ता है वह कैसे है (सूरि) विद्वान् है वैसे हे शिष्य (ते) तुमारे (दिवि) हृदयाकाश में (धियं) धा नाम बुद्धि की धाक अर्थात् तुमारे पर विद्या की उपदेशक है (प्रवेनन्) ब्रह्मज्ञानी होने से ही अत्यन्त कान्तिमान है। क्या स्पष्ट को कहते हैं मंत्र में (सा) पद है विधेय की अपेक्षा स्त्री लिंग हुवा है वस्तुत स पद है वह राजा श्रीराम हम सब जीवों के उपाधि का नाभि की समान नाभि के मध्य भीतर उपाधि हट जाने पर बाकी शुद्ध रूप ही रहता है (परमा) बड़ी त्रिविधपरि छेद से अर्थात् देश काल और वस्तु से रहित होता है मंत्र में (वाघ) पद है वह इति की अर्थ को द्योतक है (अस्य) इस राजा का पीछे से अर्थात् बाद (अहं) मैं नाभानेदिष्टः (कतिथः) कोई एक विवर्तक में (आस) था। यह आस पद लिट् लकार से अपने को भी अर्थात् ज्ञात नहीं होगा क्यों कि अपने में भी भूत का बोधक होने से। तैसे ही वंशपरंपरा यह है कि श्री विष्णु जी से ब्रह्मा जी ततः मरीचि ततः कश्यप ततः सूर्य ततः मनु ततः नाभानेदिष्ट हुवे ॥ ४० ॥

इयं मेनाभिरिह मे सधस्थमिमे मेदेवा अयमस्मि सर्वः ॥ द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदु हज्जायमान ॥ ४१ ॥

(इयम्) इसके स्थान पर अयं पद यह राजा श्रीरामजी (मे) मेरे (नाभि) पञ्चकोशके शरीर के भीतर शुद्ध रूप ब्रह्म वा जीव है (इह) इसी शरीर में ही (मे) मेरे (सधस्थम्)

गृह रूप लय का स्थान को अव्या कृत अर्थात् सूक्ष्म कारण का बोधक है। कारण के भी यही अधिष्ठान को (इमेदेवा) देवी इन्द्रिय समूह और (मे) मेरे (इमे) यह ही विधेय के अपेक्षा अर्थात् इन्द्रिय बहुत होने से बहु बचन हुवा है (अयं) यह (अस्मि) मैं हूँ (सर्वः) सब का आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी हूं। और जो कुछ है (ऋतस्य) सत्य वस्तु का (प्रथम जाः)। पहली प्रकृति उससे जायमान महत्तत्व यही अव्यक्त रूप है वैसे ही (द्वि जाः) दूसरा अहंतत्व उत्पन्न हुवा और (अह) निश्चित हैं (इदं) यह जिस को हीं इदमित्थं इस प्रकार शास्त्र ज्ञान से जायमान (अस्य) श्रीराम जी के निःश्वास से ऋग्वेदादि की उत्पत्ति हुई है (धेनुः) वाणी को (अदुहत्) प्रकाश हुवा ॥४१

अथासु मंद्रो अरतिर्वि भावाऽवस्यति द्विवर्त निर्वनेषाट् ॥ ऊर्ध्वायच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षुस्थिरं शेवृधं सूत माता ॥ ४२ ॥

अथ पूर्वोक्त मंत्र के बाद। यह श्रीराम राजा (आसु) भूमि प्रदेश में (मन्द्रो) मध्य गति अर्थात् हस्ती गमनवत् चाल है जिसका (विभावा) विशेष तेजस्वी है (अरति) ब्रह्मचर्य व्रत में युक्त (अवस्यति) अवस्थिति को प्राप्त करते हैं अर्थात् देशान्तर को जाते हुवे स्थान स्थान पर बास को करते हैं। दूसरा अर्थ (अवस्यति) राक्षसों का नाश को करते हैं। वह कैसे (द्विवर्तनिः) द्वि मार्ग हैं जिसका वह तपस्वी मार्ग का अथवा शूरमार्ग का अवलम्बन करते हैं अतएव (वनेषाट्) वन में सहते है अर्थात् शीतवातादिकों को सहते है। अथवा राक्षसों का वध करने के लिये उत्साह युक्त है अत बन सम्ब-

न्धि दुःखों को सहते हैं (यत्) जो राजा (ऊर्ध्वा) ऊर्ध्व कर दिये हैं (श्रणिः) सोपान पद्धति जिसने नका अर्थ इव अर्थ में है अर्थात् मोक्ष स्थान को इच्छा करने वालों का यह श्रीराम सिढी की तरह अवलम्बन रूप है। वह कैसे हैं (शिशु) अल्प-वय युक्त होने पर भी (दन्) दमन करते हुवे अर्थात् शत्रुओं को प्राप्त करते हैं (मक्षु) सम्यक् प्रकार से जिसको (शेवृधं) सुख पूर्वकवड़ानेवालों को (स्थिरम्) अचल स्वभाव वाली (माता) श्री देवी कौशल्याजी ने (सूत) उत्पन्न किये मूल में असुत क्यों न हुवा छन्दस होने से अड का अभाव है ॥ ४२ ॥

मध्या यत्कर्त्वम भवद भी के कामं कृणवाने पितरि युवत्याम् ॥ मनानग्रेतोज हतुर्वियन्तासानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥४३ ॥

वनेषाट् पद से कहा गया तहां श्रीअयोध्या का राज्य श्रीराम जी के लिये देने योग्य था परन्तु श्रीभरत जी के लिये योग्य हुवा अर्थात् श्रीराम जी कहें कि यह राज्य हमारे छोटे भाई भरत को देदो ऐसा कहकर बन के प्रतिप्रस्थान किये। यह ऐसा अनुचित क्यों हुवा इस लिये कहा जाता है कि कैकेयी चरित्र के बहाने से (अभीके) संग्रामनिमित्त के लिये। मध्या मध्य से अर्थात् मंथरा और श्री कैकेयी जी इन दोनों (यत्कर्त्वं) कर्तव्य को (अभवत्) वह भी श्री आप ही से उत्पन्न हुवे। पूर्वोक्त मंत्र में स्तुत यह पद का आकर्षण किया गया है। कि-समें होने पर (पितरि) श्रीदशरथजी में (युवत्यां) श्री कैकेयी निमित्त में (कामम्) श्री कैकेयी जी के लिये वर प्रदान को (कृणवाने) संपादयति अर्थात् विचार करने पर (विपन्ना) विदेश

को दोनों श्री प्रभु जाते हुवे (रेतः) उस प्रदाता पिता को (जहतुः) त्याग करते हुवे वह कैसे हैं रेतः पिता (मनानक्) मन से नहीं कहते हैं अर्थात् प्रकाश नही करते हैं श्रीराम गमन को नहीं इच्छा करते हैं अतः निर्मनस्क है अर्थात् वे शुद्ध हो गये अथवा मर गये। अतएव सुकृत के लोक योग्य हैं (योनौ) सत्य होने पर (निषिक्त सानौ) वड़ी उच्चस्थान के अथवा स्वर्ग में प्राप्त हुवे ॥ अध्यात्म पक्ष में तृष्णा रूप ताड़का राक्षसी की नाश हो जाने पर जीवात्मा शुद्ध होता है। कर्तृत्वाभिमान मारीच राक्षस के नाश से जीव निर्मल होता है। फलापेक्ष रूप सुवाहु राक्षस का नाश से भगवद्भक्ति प्राप्ति होती है। विदित हैं अध्यात्म विद्या अर्थात् बला अति बला विद्या की शुभ वासना रूपा अहल्या जागती है। धर्म रूप गौतमजी तोषित होते हैं। ब्रह्मलोक रूप धनुष को जिसने तृण के समान किया है। प्राप्त किया है श्रीसीता रूपा श्रद्धा को जिसने ब्रह्म सम्बन्धि लौकैश्वर्य रूप जामदग्न्य तप के बाधित कर लिये है जिसने। अप्रत्यक्ष रूप लक्ष्मण हैं जिस का प्रत्यक्ष ज्ञान श्रीराम ज्येठा भाई हो जिस का। देह रूपी अयोध्या में मंथरा और कैकेयी रूप मध्यस्थ मे कर्तव्य है। मनो रूप दशरथ का वचन को काम रूप रावण वध निमित्त को तहां भी अन्तर्यामी होकर अनुग्रह ही कारण है। वस्तु को इच्छा करते हुवे। सानुजश्रद्धस्य अनुज सहित श्रद्धा रुपा सीता का बनवास हुवा। जीव रूप भरत का अयोध्या बाहर निवास हुवे। तहां राज्य का इच्छा करने वाली से और भोग देह रूप वासना मंथरा और कैकेयी मध्यस्थ मे जो कर्तव्य कर्म हुवा। ततः सश्रद्धे श्रद्धा के सहित द्विधि धेप दो विधवोध होने पर भी मन से हट गया है संसार वासना जिसका उस का मन स्वर्ग पर अर्थात् मोक्ष पर मन हो गया

है। यह मंत्र योग्य होने से उपन्यस्त किया गया है ॥ ४३ ॥

दंडा इवेद्गो अजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ॥ अभवच्चपुरएता वसिष्ठ आदि त्तृत्सूनांविशो अप्रथंत ॥ ४४ ॥

श्रीराम जी के बन जाने पर जो वृतान्त है उसका कहा जाता है (दंडा इव) दण्ड को तरह यह श्री भरत लाल जो और श्री शत्रुघ्नादि (गो अजनासः गौ के चलाने के (दण्डा) यष्टि की समान कुछ करने के योग्य नहीं थे (परिच्छिन्ना) अल्प शक्ति वाले क्योंकि (अर्भकासः) कनिष्ट अर्थात् छोटे होने से उन सबों का (पुर) आगे (एता) यह पुरोहित वशिष्ठ जी होते भये (आदित) वशिष्ठ जी से ही (तृत्सू नाम्) यहां परत के लोप हुवा है और पकार का आगमन हुवा है तब (तृत्सू नां) यह दो व्यवस्था आर्ष होने से हुवा है श्रीराम दर्शन से ही तृप्ति को इच्छा करने वाले (विशः) प्रजा (अप्रथन्त) विस्तार को प्राप्त हुवे श्री भरतादि राज्य का इच्छा नही करने पर वशिष्ठ ही राज्य भार को संभारते थे ॥ आध्यात्म पक्ष में बोधार्थी जीव शास्त्र और गुरू के अधीन हो कर निर्लेप भाव होते हुवे देह संबन्धि कर्म करते है। यह मंत्र में स्पष्ट श्रीराम चिन्ह है ॥ ४४ ॥

ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वोदूरा दनसा रथेन ॥ निषू नमध्वंभवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ४५ ॥

वन यात्रा के प्रति तैयार श्रीराम जी को पीछे से जाते हुवे विश्वामित्र जी व लक्ष्मण जी अथवा ऋषि विश्वामित्र जी रास्ते के मध्य में आई हुई नदी को प्रार्थना करते हैं कि भोः (स्वसारः) भगिनी तुल्या सिन्धुनदी आदिक (ओषु) अत्यन्त सुष्ठु (शृणोत) मदीय बचन को सुनो (कार वे) करोतीति कारु बड़ा कार्य करने के लिये अर्थात् राक्षस बध रूप कार्य को करेंगे। उनके प्रीति के लिये वह ही (दूरात्) चेष्टा वाले (रथेन) रथ से (वो) तुम सबों को प्रति (ययौ) आते हुवे। अतएव (निषु) निरन्तर सुन्दर (नमध्वम्) नमस्कार को भजध्वम् स्वीकार करो (स्रोत्याभिः) क्षुद्रनदियों के साथ। सुपाराः) सुगम से पार होने वाली हो जावो (अधो अक्षः) रथ के अक्ष-नाभि के अधनीचे बहने वाली हो जावो श्रीरामायण में नाव से नदी तरण को कहा है वह भी श्रुति मूलक ही है क्योंकि कल्प भेद से जान लेना चाहिये ॥ ४५ ॥

अतारिषु भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमति नदीनाम्॥ प्रपिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आवक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥ ४६ ॥

इस प्रकार नदी तर करके चित्रकूट के प्रति श्रीरामज के प्राप्त होने पर श्री भरत जीने क्या किये यह कहा जाता है (गव्यवः) गो पृथिवी से युवन्ति अलग होकर यह गव्यवः यु मिश्रणामिश्रणयोः धातु से यौति यहां पर अमिश्रणार्थ है। राज्य को त्यागकर अलग होगए अर्थात् चित्रकूट को चल दिये इस तरह श्री भरत जी (नदी नाम) नदियों को (अतारिषु) पार हो कर उहां पर भी (विप्रः) भरद्वाज महर्षी रहते थे यह पुराण

प्रसिद्ध कथा है (सुमतिम्) शोभनमति श्रीभरत जी को (समभक्त) हर तरह से सत्कार किये अर्थात् उनके आतिथ्य भोजनादि कराये। वह भी (नयति) प्रेरणा करते है कि हे शिष्यगणों (इषयन्तीः) इच्छा युक्त प्रीति युक्त (सुराधा) बहु सम्पत्ति युक्त शाभना सिद्धि आजो प्राप्ति और प्राकाम्यादि अष्ट सिद्धि है उनकी (अपिन्वध्वम्) विशेष रूप से पुष्ट करो अर्थात् इन सबों को आदर से बोलाओं (वत्सणा) घृत पात्र और मधुपात्र इनको (आपृणध्वम्) पूर्ण करो और उससे (शीभम्) आराम प्रेमी श्रीभरत जी को (यात) पास जाओं और उनको आतिथ्य मे संतुष्ट करा अर्थात् आति थी रूप से आये हुवे उनको संतुष्ट करो ।४६॥

यदंगत्वा भरताः संतरे युर्गव्यन् यामइषित इन्द्र जूतः ॥ आर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आवोवृणे सुमतिं य ज्ञियानाम् ॥ ४७॥

ततः भरद्वाजाश्रम त्यागकर श्रीरामजीके प्रति जाकर श्रीभरतजीने क्या किया। यह भी विश्वामित्र वाक्य से जाना गया उसको कहा जाता है कि हे (अंग) हे महानदि (यत्) जिससे (त्वा) तुमको (भरताः) भरतादिक (संतरे युः) उत्तीर्ण हुवे (तत्तां) वह उसनदी को (वो) वः वहु वचन क्यों है नदी तो एक हैं वः को पूजार्थ अर्थात् आदरनीय अर्थ है (यज्ञियानाम्) तुमारे यज्ञ योग है (समतिम्) शोभनमति को नतिकरीम् नवानेके लिये मतिको (आवृणे) प्रार्थना मैं करता हूँ जिस श्रीभरतजीने (गव्यन्) गका अर्थ गां व्यन् का अर्थ नंदिनम् अपने लिये इच्छा करते है (गव्यन्) नंदि-

स्वामी हो जिस ग्राम का वह नन्दि ग्रामको (इषितः) वासके लिये इच्छा करते है अयोध्या के लिये नहीं वह वासभी ग्राममें (इन्द्रजूतः) इन्द्र श्रीरामने नंदिग्राममें रहनेके लिये प्रेरणा किये थे उससे ही (प्रसवः) श्रीरामजीके आज्ञा मानकर (अह) प्रसिद्ध (अर्थात्) गतवती प्राप्त होने योग्य अर्थात् श्रीरामाज्ञा सवत्र रोकावट रहित हुयी। कैसा वह ग्राम है (सर्गतक्तः) सृज्यते इति सर्ग अर्थात् वनाने से हो वह सर्ग है। श्रीरामज्ञप्त अर्थात् आज्ञाकारी श्रीभरतजी (तक्तः) दुःखमे जीवन जिस ग्राम में अर्थात् श्रीराम विरह दुखसे दुःखित हो रहे हैं सर्ग तक्त का समूदाय अर्थ नंदिग्राममें व्रत ने कृश शरीर होगया है तो भी श्रीभरतजी श्रीरामाज्ञासे राज्यको करते भये॥ ४७॥

नहि षस्तव नो ममशास्त्रे अन्यस्य रण्यति यो अस्मान्वीर आनयत्॥ ४८॥

ततो नन्दि ग्राममें निवासके बाद) श्रीलक्ष्मणजीके लिये राक्षसी वारंवार पार्थना करती हुई को श्रीराम वचन रूप रचनासे शूर्पणखा को तीरस्कार करते है: नहीं वह श्रीलक्ष्मण जी (हि) निश्चित (तव शास्त्रका अर्थ अर्थात् तुमारी आज्ञामें (नो) नही (रण्यति) चलेंगे (मम) मेरा अथवा (अन्यस्य) दूसरेके आज्ञामें नही चलेंगे। क्योंकि वह (वीर) वीर हैं (अस्मान्) हम सबोंको (आनयत्) लाये हैं हम सब उनके आधीन हैं यह हम सबसे अधीन नहीं है॥ ४८॥

इन्द्रश्चिद्धा तद ब्रवीत्स्त्रि या अशास्यं मनः॥ उतोअहक्रतुं रघुम्॥ ४९॥

ऐसे कहने परभी वह जब अति आग्रह करनेसे नहीं

निवृत्त हुई तब श्रीरामजी कहै कि (चिद) और इति अनर्थके अव्ययनिपातन होनेपर इसी तरहसे (उत) और अह यह दोनों निपातन है। (इन्द्र) श्रीरामजी (तत) उसको वक्ष्यमान वचनको कहेंगे (रघुम) श्रीलखनजी को अब्रवीत) कहते भये क्या कहते भये (स्त्रिय) स्त्री का (मन) मन (अश्यास्यम) परवसहैं क्योंकि जादेचांचल्य होनेसे। वह रघु कैसे हैं (क्रतुम) कृणाति का अर्थ हिनस्ति अर्थात् वध करने वाले क्रतु कहे जाते हैं। वह शूर्पणखा को ही मारनेके लिये इच्छा किये ॥ ४९ ॥

सप्तो चिद्धा मदच्युता मिथुना वहतोरथम् ॥ एत्रे द्धूर्वृष्णा उत्तरा ॥ ५० ॥

पुनः क्या कहैं उसको कहा जाता है (सप्ती) नाम घोडाका है उससे तयोः शूर्पणखा और अश्व न दोनोंका सम न प्रतिपादन किया जाता है। उच्चाकान हैं इस राक्षसो की अश्व के तरह (मदच्युता) मद गिर रहा है दानो घोड़ोंको (रथं) शरीरको (वहत) ले चलते हैं। यह अश्व कसे हैं गाढ अंधकार होनेपर भी श्रोत्र बलसे दूरमें स्थित बोलाने वाले को पास में चल देते है जैसे शब्द वेधिबाण शत्रुओं का भेदन करता है (वृष्णः) वर्षनेका अर्थात् मदस्रावी (धूः) धूर की तरह धूर नामक वंश अर्थात् नासिकाके (उत्तरा) श्रेष्ठ भाग उच्चा है। एत्रइत्के स्थानपर एवम् एव इति जानना इसका अर्थ छेदनाभि नय अर्थात् काटनेके अभिप्राय है। इस शूर्पणखा की कर्ण और नासिका काही काटने योग्य है। मारने योग्य नहीहै यह सूचित हुआ अर्थात् इसकी शिक्षासे आगे बहुत कामहोगा अतः श्रीप्रभु के कथनसे वैसेही किया ॥ ५० ॥

अद्यः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ॥

मातेकश प्लकौ दृशन्स्त्रीहि ब्रह्मावभूविथ ॥५१॥

कर्णनास कटजानेसे उसके निमित्त विघ्न संभावनासे श्रीरामजी श्रीजनकजाको शिक्षा करते हैं हे जनकजे तुम (अधः) नीचको (पश्यस्व) देखो इधर उधर न देखो अथवा संमुख आए हुए पुरुषों को भी न देखो (मोपरि) ऊपरभी न देखो वहां भी आकाश चारी पक्षी गणों का दर्शन के संभावना हो सकता है (पादकौ) दोनों पादों को (संतराम) संभार कर अर्थात् अति सम्यक् देखकर (हर) चलो (ते) तुमारी (कश-प्लकौ) एडीके ऊपर दोनों गुल्फ को ढाककर (मा) न देखा जाय (हि) जिससे (स्त्री) अपनो शरीर के अवयव द्वार से अर्थात् परम सती की यह परम धर्म है कि अपने शरीर को सदा छिपाये रखने से (ब्रह्मा) ब्रह्म ज्ञानी होती है (बभूविथ) पहले ऐसे आचरण वाली बहुत हुवे क्योंकि संयमवती ब्रह्म ज्ञानी ही उत्पन्न होती है और पुंश्चली स्त्री को दुरात्मा होने से वंचक राक्षस से ठगी जाती है अतः अपने आत्मा की रक्षा करो। आध्यात्म पक्ष में विषय स्पृहा रूपा शूर्पणखा है परोक्षत्रो धरूप लक्ष्मण से वाध्य होने पर अन्तर्यामी रूप अपरोक्ष श्रीराम जी के प्रेरणा से उसका कारण विषय ग्राही घ्राण और कान को काट दिये ॥ ५१ ॥

सइद्दासन्तु वीरवं पतिर्दन् षडक्षत्रिशीर्षाणं दमन्यत् ॥ अस्य त्रितोन्वो जसा वृधानोत्रिपा बराहमयो अग्नयाहन् ॥ ५२ ॥

ततः कट जाने के बाद विरूपित शूर्पणखा को देखकर खरारि वह दो श्रीराम लक्ष्मण जी को बध के लिये आए हुए

खरदूषण त्रिशिर नाम धारी श्रीराम जी उनको मारे यह कहा जाता है। "**कंनश्चि त्रीयेण**," मंत्र से (सः) वह ही श्रीराम जी (दासम्) दास रूप राक्षसों को (वीरवम्) भयंकर दूषण को उपक्षिण वन्तं मारे बड़ा शब्द कारीखर को (षडक्षम्) त्रिशीर्षाणम्) छः नेत्र वाले तीन शीरधारी को मारें (पतिः) रक्षक श्रीराम (दन्) दुष्टों का दमन किये (दमन्यत) नाश किये (अस्यैव) इसी के ही दूषणादि मारणे का विशेष रूप से (ओजसा) बल से (वृधान) बढ़ने वाले (त्रितो) नाम अंगुली की (अय) लोहा के अग्र भाग अर्थात् बाण के (अग्रया) अग्रभाग के तरह तीक्षण नखसे (बराहम्) महान् बराहाकार दानव को (हन्) मारे थे यह खलों को मारणा क्या आश्चर्य है इससे आप श्री के अनुग्रह से ही यह कार्य हुवे हैं ॥ ५२ ॥

यद् चरस्तन्वा वावृधानोबला नीन्द्रप्रब्रुवाणो जनेषु ॥ मायेत्सातो यानियुद्धान्या हुर्नाद्य शत्रुं ननुपुरा बिवित्से ॥ ५३ ॥

इस प्रकार खरादि के मार कर स्थित श्रीराम जी की देवगण स्तुति करते हैं। "**तां सुतीयेन मंत्रेण**" से हे (इन्द्र) श्रीराम जी (जनेषु) पञ्चवटी में (तन्वा) शरीर से (वावृधान) महीयान (बलानि) सामर्थ्य पूर्वक (प्रब्रुवाणः) कथन करते हुवे राक्षसों को हनन करते हुए (यदचरः) आप श्री के चलने फिरने से ही यह कार्य करते हो (यानि) इस युद्ध को कहते हैं विस्तार पूर्वक ऐतिहासिक जन (सा) वह (ते) आप श्री के (मायेत्) माया ही अर्थात् इच्छा से ही हुए । जिससे आप

(अद्य) आज (पुरा) पहले भी शत्रुओं को भेदन किये थे (ननु) निश्चित नहीं (विवित्सेन) आप क्या नहीं जानते हैं किन्तु जानते ही हैं क्योंकि आप समस्त के अन्तर्यामी हैं ॥ अध्यात्म पक्ष में खर मान है दूषण मत्सर हैं त्रिशिराः धन विद्या और अभिजन यह तीन त्रिधमदयुक्त उन सबों को स्पृहा सहित मारे थे जैसे योगी माया मात्र जगत्को देखता है ॥ ५ ॥

स्त्रियंदृष्ट्वा यकितवंततापान्येषां जायां सुकृतंचयोनिम् ॥ पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजेहिबभ्रून्सो अग्नेरन्तेबृषलःपपाद ॥ ५४ ॥

खरादि के बध रूप इस वृत्तान्त को शूर्पणखा के मुख से सुनकर रावण क्या करता भया यह कहा जाता है (स्त्रियम्) शूर्पणखा के कान नाक कटे हुए (दृष्ट्वाय) देखकर (कितवम्) कपट मृग और संन्यासी वेष धारी राक्षस दो को कर्ता कहा है। स्त्री श्रीजनकजाजी को देखकर दोनों राक्षसदुग्ध अर्थात् अपने को कृत्य कृत्य मानने लगे और विचार करने लगे कि मेरे गृह में यह देवी किस रीति म पधारेंगे (अन्येषाम्) क्योंकि खरादियों को मारने वाले श्रीराम जी की यह धर्म पत्नी है अत परम सती भी है। (सुकृतम्) अग्नि होत्रादिक को (योनिम्) परंपरा बंश को (ततापः) विचार शाली है। जाया हरण से ही तीनों दुःखित हुए अर्थात् दोनों श्रीप्रभु और जगज्जननी। इन तीनों को दुःख पहुँचाऊ ऐसा विचार कर रावण (वभ्रून्) अश्व को (पूर्वाह्णे) प्रातः काल ही (युयुजे) रथ के अश्व को जोड़कर चल दिया वह रावण कैसा है (वृषलः) क्षुद्र बुद्धि युक्त और धर्म द्रोही (अग्नेः) अग्नि के अन्त में अर्थात् श्रीरामाग्निशाला के समीप में (पपाद) मारीच के साथ गया ॥ ५४॥

इन्द्रतुभ्यमिदद्रिवोनुत्तं वज्रिन्वीर्यम ॥ यद्धत्यं मायिनं मृगंतमुत्वं मायया बधीरर्चन्ननु-स्वराज्यम॥ ५५ ॥

ततः जाने के बाद मारीच के मारे जाने पर श्रीराम जी को ऋषि-समुदाय स्तुति करते हैं हे इन्द्र श्रीराम जी (तुभ्यमित्) आप ही का (बीर्य) सामर्थ्य को (अनुत्तम्) कोई से भी आप परास्त नहीं हुए हैं (अद्रिवः) अद्रि नाम पर्वत रूप शिव चांप को वाति नाश करते हैं अतः आप अद्रि हैं (वज्रिन्) अत्यन्त आग्रह से बारंबार संबोधन है (यत्) जिसने (ह) आप श्री प्रसिद्ध है (त्यम्) परोक्ष बनावटी मृग रूप मारीच को (त्वम्) आप (मायया) अपने इच्छा से मानुष देहधारी होकर (अवधी) दुष्टों को नाश करते हो जिससे (स्वस्य) आप अपने (राज्यम्) राजो चित्त कर्म को (अन्वचंन) स्ववंश परंपरा आया हुवा को (अनु) स्वीकार करते हैं क्योंकि राजाओं का सिकार करना उचित्त ही है अतः आप्र मारते हो द्वेष बुद्धि से नहीं क्योंकि आप सर्वात्मा होने से ॥ ५५ ॥

योवः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमोबभूव ॥ तस्मै कृणोमि नधना रूणध्मि दशाह'प्राचीस्तदृ तंवदामि ॥ ५६ ॥

तत मारीच बधार्थ श्रीराम जी के दूर जाने पर उनके अनुयायी श्रीलखन जी के भी जाने पर दोनों श्री प्रभु से रहित श्रीजनकजा की रावण प्रार्थना करता है। प्रार्थीरावण के प्रति श्रीजनकजा जी कहती है (योवः) वः का अर्थ तुम राक्षसों का (महतः) बड़ा (गणस्य) समूह का (सेनानी पति है अर्थात्

तुम बड़ा (व्रातस्य) नाम समूह का (प्रथम) मुख्य (राजा) जनाधिप (बभूव होते हो (तस्मै) तुमारे लिये (कृणोमि) मारती हूँ जल्दी ही नाश करूंगी (धना) आप के धन का (नरूणाध्म) नहीं इच्छा करती हूँ यह मैं (ऋतम्) सत्य वाक्यको (दशप्राची) दशों दिशाके प्रति (वदामि) कहती हूं ।५७।।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमानदर्शि ॥ चिकिद्विभाति भासा बृहता सिक्नी मेति रूशतीमपाजन् ॥ ५७॥

इस प्रकार रावण को तिरस्कार किये तब श्रीजनकजा के हरण के लिये प्रयत्न देखकर अग्नि देव विचार करने लगे कि यह राक्षस हम सबों से अवध्य हैं अतः मन से ही श्रीरामजी को संबोध किये हैं (राजन्) हे राजन् (इनः) यह राक्षस बलवान है (अरतिः) अप्राप्त काम सुख वाला है (समिद्ध) कामाग्नि से अर्थात् इच्छा पूर्ति न होने से प्रदीप्त नाम ज्वलत है (रौद्रो) अतः भयंकर है (दक्षाय) साहस के लिये तत्पर है (सुषुमान्) समर्थ है (अदर्शि) देखा गया है (चिकित्) आप के सामर्थ्य को जानता हुवा भी (विभाति) विपरीत ही आचरण करने वाला दीप्यते प्रतीत होता है (भासा) पुरुषार्थ से (बृहता) बड़ा है (असिक्नीम्) यह श्रीजनकजा जी की विशेषण है वह कैसी है असिक्नी का अर्थ काल रात्री की समान कृष्णा का अर्थ काली रूपा है (रुशतीम्) दह्य मान अर्थात् अभि भस्म कर देती है ऐसी श्रीजनकजा जी के पास (एति) रावण आता है (अपाजन्) अभि ले जाता है इनको चुराकर के यह अभिप्राय है ॥ ५७ ॥

कृष्णां यदेनीम भिवर्प साभूजनयन्योषां

बृहतः पितुर्जाम् ॥ ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्यस्तभाय-न्दि वोवसुभिर रतिर्वि भाति ॥ ५८ ॥

वह इस तरह बिचार करते हुए अग्नि देव (यत्) जब (कृष्णाम्) काल रात्रि तुल्य (एनीम्) विवर्ण भय दायिनी श्री जनकजा जी को (वर्पसा) ठहर ठहर अर्थात इधर उधर देखता हुवा जाता है ऐसा देखकर अग्नि देव (वर्पः) अर्थात् अपने रूप को इन कवच से एतद्द् आच्छाद केन अर्थात् आत्मि-कबल से (अभ्यभूत्) तिरोहित अर्थात् श्रीजनकजा जी को छिपा लिये कि (भूत) किस की आज्ञा से (बृहतः) श्रीराम जी के संकल्प मात्र से (योषां) उसी स्थान पर दूसरी रूप वाली स्त्री रूपा छाया श्रीजनकजा को (जनयन्) उत्पन्न कर दिये (पितु) श्रीरामजी का (जाम्) पत्नी की सादृश जाया को तदा उस समय उनको ग्रहण करके (अरतिः) शत्रु रावण (उर्ध्वम्) आकाश मार्ग को (सूर्यस्य) नाम दिव अर्थात् द्युसंबन्धि देव गण के और अष्ट वसुदेवता विशेष रूप से विद्य-मान थे तो भी तेषां उनके साथ सबों का (भानुं) हस्त को (स्तभायन्) रोक दिया (विभाति) सुशोभित होता है। रावण आकाश मार्ग से ले जाता हुवा श्रीजनकजा जी को रावण से छीन लेने के लिये कोई भी समर्थ नहीं हुए ॥ अध्यात्म पक्ष में स्पृहा से अर्थात् शूर्पणखा से भेजा हुवा मारीच रूप दंभ है रावण रूप काम है यह दोनों श्रद्धा रूपा श्रीजनकजा जी को दंभ के संमुख करके। परोक्ष अपरोक्ष रूप ज्ञान को अर्थात् श्रीराम और श्रीलक्ष्मण जी को दूर करते हैं और काम इच्छा को चुराते हैं। अग्नि देव सतु उस सात्विक श्रद्धा रूपा श्रीजन-कराज तनया को गोपित किये "भद्रोभद्रया," आगे आने वाले

मंत्र में श्रीअग्नि देव जी सच्ची श्रीजनकजा जी को श्रीराम जी के लिये समर्पित किये है यह दो मंत्रों के देखने से भी श्रीरामपरक ही है ॥ ५८ ॥

सईं वृषान फेनमस्यदाजौस्मदापरैद्पद
प्रचेताः। सरत्पदान दक्षिणा पराबृं नतानुमेपृशन्यो
जगृभ्रे ॥ ५६ ॥

(सः) वह हृतदार श्रीराम जी (ईं) इन श्रीजनकजा जी को निमित्त करके (आजौ) संग्राम में राक्षसों के साथ (अस्यत्) इति आस्यत् फेका हुवा बाणों का तहां पर दृष्टान्त है (वृषान फेनम्) जैसे सांड क्रोधित फेन के कण मुख नासिका से फूत्कार शब्द को करता है वैसे ही श्रीराम जी के हो रहा है। तहां कारण यह है (दभ्रचेताः) स्थूल बुद्धि वाले (अर) यह स्मृति अर्थ में निपातन है (स्मत्) मेरे (परा) परोक्ष होने पर (ऐरत्) भग गया है श्रीहरण वाले को यदि प्रत्यक्ष होता तो तब जल्दी ही मारता। तब क्या करते भये सो कहा जाता है (सरत्) वह तो भग गया (दक्षिण) दक्षिण देश को (पदान) जैसे अश्वादिकों का पद को भूमि में खोजते खोजते चलते हैं वैसे ही पद से (सरत्) श्री जी जिधर को गई है उधर को जाते हुवे (पराबृक्) हारे हुवे शोक से (ताः) वह प्रसिद्ध (पृशन्यः) पूछते हुवे चलते हैं। अपने इष्ट देश को जाते हैं अर्थात् जिधर को वह गई है उधर को ही जाते हैं (वह) पृश-न्य है अर्थात् शुभा शुभ फल सूचक पशु पक्षी गण से (मे) मुझ को (न) नहीं (अनुज गृभ्रे) ग्रहण करते हैं अर्थात् मैं जिससे पूछता हूँ वह सब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं और सीता प्राप्त

सूचक शकुन भी नहीं होता है यह श्रीराम जी अत्यन्त शोक करते भये अध्यात्म पक्ष में श्रद्धा बिना बिलक ज्ञान दक्षिण का अर्थ सिधे धर्म मार्ग से श्रद्धा प्राप्ति को अपने कल्याण के लिये कामना किये यह छाया की अर्थ है यह मंत्र मध्यायकतु: यहा तक जानना ॥ ५६ ॥

विधुं दद्राणं समने बहूनांयुवानंसंतंपलितो जगार ॥ देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार- सह्यः समान ॥ ६० ॥

(समाने) संग्राम में (विधु बहूनां) बहुत शूरवीरों का नाश किये (दद्राणम्) भागने वाला जवान होते हुवे रावण श्री जी चुराने वाले को (पलितो) वृद्ध भी आंग्न मंत्र से अरुण पुत्र सुपर्ण यह जाना जाता है। उसने जटायु नाम पक्षी (जगार) निगील गये। तब हमारा काम हो गया सिद्ध क्यों कि मैं यही चाहता था कि रावण मारा जावें अब तो मरी गया। ऐसा नहीं कह सकते हो क्यों कि (देवस्य) श्रीरामजी का ही कार्य है अर्थात् समस्त राक्षसों को जीतने के लिये इच्छा कारी इन्द्र है (काव्य) कान्त रर्शित्व को (पश्य) देखा गया है। यदि आज ही रावण मारा जाता है तब रावण से भिन्न राक्षसों का क्षय नहीं होगा इसी लिये श्रीराम जी की निवृत्ति हो जावेगी। जिस के लिये (ह्यः) बीत गई दीन में (समान) सका अर्थ सम्यक् आन का अर्थ अचेष्ट अर्थात् चेष्टा युक्त रावण का अभि भव किये (स) वह जटायु जी (अद्य) परेद्युः अर्थात् दूसरे रोज (ममार) आप मर गये। सर्वराक्षसक्षय के लिये जटायु जी का मरण भी देवेन्द्र श्रीरामजी से ही संपादित संकल्पित है।

अध्यात्मपक्ष में मनरूप दशरथजीके दुःख का नाशक होनेसे विवेक रूप जटायु तत्सखा दशरथजीका भाई वह भी श्रद्धा रूप सीताजी हरण काम को अर्थात् रावणको रोकने के लिये नहीं समर्थ हुए किन्तु स्वयंही नष्ट हुवे ॥ ६० ॥

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आयोमहः शूरः सनादनीरः ॥ यच्चि केत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ ६१ ॥

(सुपर्णः) जटायु महाराज (यच्चिकेत) यत् जो जानने भये कि मैं रावणको मारकर श्रीरामजीके लिये श्रीजनकजाजी को देऊंगा (तत्सत्यमित्) वह कथन सत्य ही है (न) नहीं (मोघं) निष्फल नहीं है क्योंकि मरा हुआ भी साधुका संकल्प असत्य नहीं होता है अतः (स्पार्ह) श्लाघनीय (वसु धनरूप श्रीजी को श्रीरामजी रावण का मारकर ' जेता) जीतेंगे (उतदाता) निश्चय राक्षस रूप वनको दाता काटेंगे । वह जटायुजी कैसे हैं (सुपर्णः) सुन्दर हैं पक्ष जिसका वह सुपर्ण है शाक्मनाशाकः) कर्नोति अनेन अर्थात् उत्साह से समर्थ है (अरुणः) श्रीरामजीमें प्रेम युक्त वाले है अथवा अरुणपुत्र होने से अरुण है (महः) महान् शूर है (सनात्) सर्वदा (अनीडः) निवासरहित महा योगी है ॥ अध्यात्मपक्षमें यत् जिसको विवेकसे देखा गया है वह जटायुजी अवसर आनेपर बोधकासमर्थयत संपादन करते भये अथवा सुपर्ण दूरगामी होनेसे है ॥ ६१ ॥

ऐभिर्द देवृष्णया पौंस्यानि येभि रौक्षद् वृहत्याय वज्री ॥ ये कर्मणः क्रियमाणस्य म

ह्व ऋते कर्मणुद् जायन्त देवाः ॥ ६२ ॥

कैसे जटायुजीका संकल्प है वह सत्य ही हुआ उसे कहा जाता है (एभिः) वानर रूप देव (वृष्णया) धर्म शील सदाचारी पशुका चिन्ह जो पूंछ और पादचारित्वादिक युक्त (पौंस्यानि) पुंस मनुष का चिन्ह युक्त जोहस्त दापित्वनाम धारण उठाना कर्म युक्त त्रिकोप नाम तीन बेठक चुतलपृष्ठ हस्तादिसे वानरमें यह देखा गया है (आददे) वस्तुओंके ग्रहण सामर्थ्य युक्त। वानर तो बहुत है आददे क्रिया एक वचन कैसे। आददिरे होना चाहिये आर्ष होनेसे एक वचन है (येभिः) उपात्तनाम ग्रहणके चिन्हसे युक्त (वज्री) इन्द्र ही वालिरूप में है वह वृत्रासुर बध पाप भोग रूप दण्डके लिये मारा गया (औक्षत) बालि ने वीर्य शेचन किया वह कापेय चञ्चल स्वभावसे छोटा भाई की पत्नी पुत्री की समान होती हैं। उसको अपनी स्त्री किये अतः बालि बध योग्यही था अतः मारा गया (ये) जोदेव (ऋते) विनाकर्म वानरयोनीको धारण किये दुरित विनाभी (क्रियमाणस्य) उत्तम काम करने के लिये अर्थात् सेतुबन्धन द्वारा पारजाकर राक्षस वधरूप (कर्मणः) काम करेंगे (मन्हा) श्रीरामसंकल्प से (उदजायन्त) वानररूपमें उत्पन्न हुए (देवाः) वानररूपसे सहाय होनेसे यह श्रीजटायुजी का संकल्प है अतः श्रीरामजी साधितवान नाम स्वीकार किये॥

अध्यात्म पक्षमें वोधसहाय से श्रोत्रेन्द्रिय पाञ्च ध्यान में अन्तर मुख होकर और वेदान्त के सुनने के लिये वहिमुख यह ज्ञानाम ज्ञानी होकर इस काल में अज्ञानी चिन्ह को धारण करते है। तहां महान होकरभी पूर्वोक्त वहिमुखसे प्रमाद करते हैं इसलिये अन्तमुख सेही सर्वदा स्थित होना चाहिये। इसपक्षमें कर्म के विना क्रियमाण कर्मका योग धर्मका महात्म्य

से देवगण साधक होते हैं अतः उत्पन्न होते हैं कार्य पश्चात् ब्रह्म भावको प्राप्त होते हैं यह जानना चाहिये ॥ ६२ ॥

नीचीनवारं वरुणः कबंधं प्रस सर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टि व्युनत्ति भूम ॥ ६३ ॥

सुग्रीव सख्य से पहले कबन्ध वध को कहा जाता है। जो श्रीराम समस्त ब्रह्माण्ड का राजा है (रोदसी) आकाश (अन्तरिक्षम्) भू से लेकर सूर्यपर्यन्त अन्तरिक्ष कहा जाता है (प्रससर्ज) उत्पन्न किये (नीचीनवारम्) अधो द्वारको वक्ष स्थल मुखकबन्ध राक्षसको (वरुणः) स्वीकार हो करके उस कबन्धने (भूम) भूमिको (व्युनत्ति) आर्द्रको करता है अर्थात् कबन्धके रुधिर से भूमीको भीजाकर जैसे (वृष्टि) वर्षा यवको भीजाता है वैसेही रुधिर से भीजाये (न) का अर्थ सादृश है निषेधार्थ नहीं ॥ ६३ ॥

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्त वध्रये ॥ मायाभिर श्विना युवं वृक्षं संच विचाचथः ॥ ६४ ॥

वानरों के साथ श्रीराम जी के सख्य प्रसंग को कहा जाता है यहां पर पुराणान्तर को उपाख्यान में। जाम्बवान श्रीब्रह्माजी के अंश हैं वह ऋक्षराज थे कोई कारण से ज्ञातियों से अलग किये गये पश्चात् अपने राज्य को प्राप्त हुए प्राप्तकर तप करते समय में उनको दो युवक राजकुमार वेष में आ मिले

और बोले कि हम दोनों को तृप्तिकारक तुम शत्रुओं को जीतोगे वह जाम्बवान् फीर उन दोनों में से ज्येष्ठ के लिये अपनी पुत्री को देनेकी इच्छा से जब तक कुछ कहने की इच्छा किये उतने में ही अन्तर्ध्यान हो गये फिर वही दोनों प्रभु त्रेता युग में सुग्रीव सहित देखे तब उन दोनों प्रभु को देखकर हृदय भज्ञा हुई कि मैं ने इन दोनों राजकुमारों को देखे थे अब भी दोनों को देख रहा हूँ इस वृतान्त की सुग्रीवको उप देश करते हैं। इन दोनों से हे सुग्रीव तुम मित्रता करो। यह दोनों आप के कार्य को करने के लिये समर्थ है। यह बचन सुनकर श्रीहनुमान द्वारा श्रीरामजी के साथ मित्रता किये। पश्चात् ज्येठा भाई के राज्य को। उसने हरण किये थे। अपने स्त्री रूमा को प्राप्त किये। तहां पर जाम्बवान आर्तभक्त है सुग्रीव तो अर्थार्थी भक्त हैं हनुमान जी निष्काम भक्त है इन तीनों का क्रम से निरूपण किया जाता है (भीताय) जाति भाई सेनी काले गये थे जिससे (नाधमाय) उपतप्त उनका हृदय था अर्थात् अशान्त था हुआ श्रीराम जी के लिये हुई बात पहले प्राप्त करके सर्व मंत्र देखने के लिये (सप्तबध्रये) बध्रि नाम चर्मरज्जु सात संख्या वाली त्वचू कफ मांस मज्जा अस्थि मेद शुक्र नामधारी धातु ही वह्नि रूप बन्धन हैं जिस का उसके लिये सप्तबध्रये कहा गया है। पार्थिव पशु देह को प्राप्ति के लिये हम को ग्रहण करने के लिये अर्थात् दया के लिये है अश्विनी कुमार सादृश अति रमणीय आप दोंनो का सौन्दर्य शरीर मनुष्य उपाधि युक्त हो अथवा सूत्र श्रीरामजी अन्तर्यामी श्रीलक्ष्मण जी (मायाभिः) अपनी इच्छा से मानुषवेष से (युवाम्) आप दोंनो को (वृक्षम्) नाम मेरे आश्रित तप स्थान भूत (समचथः) सब तरह दया करके आप दोनों पधारे हैं। इस के बाद मेरे उपर दया करके

(व्यचथः) परिश्रम रहित होकर शीघ्रही आप श्री की दर्शन प्राप्ति होने पर। यह मंत्र सकाम भक्तों का है इस लिये बिलम्ब से दर्शन रूप कार्य होता है। यह प्रकाश करता है कि वैसे विध जाम्बवान जी यह योग्यत्व होने से प्रकृत उपयोगी कथा का सूचक होनेसे इस मंत्र का कथन हुवा है। यद्वा से दूसरा अर्थ उर्यहक से प्राण ज्ञान इन्द्रिय कर्म इन्द्रिय मन से होने वाले तम नाम अविद्या काम्य कर्म रूप से सब बन्धे हुए हैं। यह ऋक्ष और बानर ऋते कर्म के बिना उत्पन्न है यह कहा गया है। कर्म बन्ध हीन होने से भी सप्तवध्र पद है। यद्यपि संयोग और विप्र योग होता ही है इस न्याय से व्यचथ ऐसे ही कहना चाहिये लोक दृष्टि से परमार्थ दृष्टि से एक बार प्रकाश होने से। यह श्रुति प्रमाण से जिसने एक बार परमात्मा का दर्शन कर लिया है उस को बियोग नहीं हो सकता है। तथापि जाम्बवान जी को काम ग्रस्त होने से उत्पन्न होने पर भी दर्शन से वह कृत कृत्यता को नहीं प्राप्त हुवे इस ज्ञापन के लिये व्यचथ कहा गया है। अतएव श्रीरामावतार में भी भगवान जाम्बवन्त जी से जामातृत्व संबन्ध को अंगीकार नहीं किये क्योंकि एक पत्नीव्रत होने से किन्तु कृष्णावतार में बिलम्ब से यह कार्य हुवा॥ ६४॥

देहिमेददामिते निधेहिमेनितेदधे॥ निहारमिन्मेहर निहारं निहारमिते॥ ६५॥

(मे) मेरे लिये पहले (देहि) दो पश्चात् मैं सुग्रीव तो पहले अपने स्वार्थसिद्ध होजाने पर पश्चात् आप श्री की आराधना करूंगा यह अक्रम से स्वीकार हुवा प्राकृत भक्त के स्वरूप को कहा जाता है (ते) आप श्री के लिये (ददामि) दूंगेवैसे

ही (मे) मेरे लिये (निधेहि) धारण करो मैं भी (ते) आप के लिये (निदधे) मैं धारण करूं। यह पूर्व के तरह है वैसेही (निहारम्) प्रेषणीय द्रव्यको (मे) मेरे लिये ही पहले (हर) प्राप्त करो। पश्चात् मैं (ते) आप के लिये (निहारम्) प्राप्त करूंगा। भृत्य द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किये हुए श्रीरामजी सुग्रीव को पहले अनुहीत करके पश्चात् ततः स्वकार्य सिद्ध के लिये इच्छा किये ॥ ६५ ॥

एवाहित्वामृ तुथा यातयंतं मघाविप्रेभ्यो-ददतं शृणोमि ॥ किंते ब्रह्माणोगृहृणते सखायो येत्वायानिदधुः काम मिन्द्र ॥ ६६ ॥

इस तरह सकाम युक्त जाम्बवान और सुग्रीव इन दोनों के ऊपर कृपा करके निष्काम भक्त हनुमान जी के ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा किये श्रीरामजी को हनुमान जी कहते हैं। (एवा) इस प्रकार शास्त्र दृष्ट रीति से (हि) निश्चित (त्वाम्) आप को (ऋतु था) काल काल में (यातयन्तम्) अन्तर्यामी से यज्ञादि विषय में प्रयत्न को करवाय के उसका फल रूप (मघा) धनको और (विप्रेभ्यो) श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ के लिये (ददमां) देते हुए (शृणोमि) सुनता हूँ परन्तु (किं) कैसे (ते) आप के सम्बन्धि (ब्रह्माणो) ब्राह्मण मेरे सदृश (गृह्णते) ग्रहण करते हैं अपितु देने पर भी नहीं ग्रहण करते हैं (सखायो) निष्काम दास हूँ (अतएव) (येत्वा) जो आप को अर्थात् आप में काम प्रेमको (निदधुः) धारण करते हैं आप के निष्काम प्रेम से ही समस्त कार्य को मैं करूंगा आप श्री से कुछ भी दूसरा याचना नहीं करूंगा। यह मंत्र त्रयको कथा का संबन्ध

नहीं है किन्तु गुण कथन पर होने से प्रसंग से कहा गया है ॥ ६६ ॥

कथा देवानां कतमस्ययामनि सुमं तुनाम शृण्वतांमना महे॥ को मृडातिकतमो नोमयस्कृत्कतमऊती अभ्यावर्वर्त्ति ॥ ६७ ॥

मेरे लिये दे दो आप के लिये देऊंगा यह कथन सुग्रीव का कार्य वालि बध रूप है इन सेब्रीयं शेचना रूप अपराध है और वृत्रासुर बध रूप पापके लिये वज्री सूचित पहले ही कहकर के श्रीरामजी अपने कार्य को बिचार करते हैं (कथा) किस प्रकार से है (शृण्वतां) मेरे बचनों को सुनो (देवानां) बानर रूप का मध्य में (कतमस्य) कौन नाम धारी (सुमन्तु) शोभन रूप से मानने योग्य है (मनामहे) मैं जान सकूं (यामनि) श्रीजनकजा की खोजन रूप प्रवृत्ति के लिये गमन विषय में (को) कौन (नः) हम सबों को (मृडाति) सुख देवे (कतमो) कौन अथवा हम सबों को (मयः) सुख का (करत्) करे (कतम) कौन साव्यक्ति (ऊति) हमारा बिभूति रूपा श्रीजनकजा जी को (अभ्यावर्वर्तति) ले आवेगा उस व्यक्ति को हम सब नहीं जानते हैं ॥ ६७ ॥

क्रतू यंति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनंति वेनाः पतयंत्यादिशः ॥ न मर्डिता विद्यते अन्यएभ्योदेवेषुमेअधिकामा अयंसत ॥ ६८ ॥

क्रतवः साक्षात् सत्यसंकल्प धारी श्रीरामजी (क्रतूयंति) अपने क्रियाम् कार्य को इच्छा करते हैं मेरे सेवा की करने के लिये कौन इच्छा करते हैं (हृत्सु धीयः) हृदय में बुद्धिमान (वेनंति) शोभनयुक्त (वेना) अत्यन्त कमनीया चारो तरफ दिशाओं के (पतयंति) जाने में समर्थ है (एभ्यो) बानर रूप देव गण से दूसरा कौन हैं कि (नमर्डिता) सुख दाता नहीं (विद्यते) है (मे) मेरा (कामा) मनोरथ (देवेषु) यह देव के विषय में हीं (अयसत) पूर्ति होगा ॥ ६८ ॥

तेनो अर्वन्तो हवन श्रुतो हवंविश्वे शर्यांवंतुवाजिनो मितद्रवः ॥ सहस्त्रसामेधसा ताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥ ६६ ॥

इत्यादि बिचार करके बानरों के प्रति कहते हैं (ते)वह- बानर (अर्वन्तः) शीघ्रगामी (वाजिनो) बानर (नो) हमसबों को (हवम्) आख्यान को (शथावन्तु) सुने वह कैसा (हवन- श्रुतः) है (हवम्) आव्हान को सुनते है वह बानर वैसे (विश्वे) सब (मित द्रवः) परिमित चलने वाले हैं (येत्मना) जो बानर अपने से (सहस्रसाः) हजारो से संमित स्यनाम अधिक धना- दि को संभकार अलग अलग कर करके वाटने वाले हैं (मेधसा) बुद्धि मानी से (ताविव) उन दोनों के सदृशथश में समान (समिथेषु) संग्राम में (महः) पूजनीय (धनं) शत्रुओं का धन को (जभ्रिरे) हरण किया हुवा धन को । यज्ञ में ऋत्विज के समान अपने भृत्यों को दिया जावेगा ॥ ६६ ॥

प्रवो वायुं रथयुजं पुरंधिस्तो मैः कुणुध्वं

सख्याय पूषणम् ॥ तेहि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचंते सचितः सचेतसः ॥ ७० ॥

हे देवगण (वः) आप सबों को मध्य में (वायुं) पवन पुत्र को (रथयुजं) देह धारी अर्थात् नित्य सूरि (पुरंधि) आगे इनको करो अर्थात् आप सब के बीच में प्रधान हैं इस भाव से (स्तोमैः) स्तुति अर्थात् प्रसंशा (कृणुध्वम्) धारण करो (सखाय) मित्र के तरह कार्य के लिये (पूषणं) धारण करो क्योंकि मेरे कार्य के लिये इन को विशेष रूप से स्तुति करो (हि) जिससे (ते) आप सब का यह स्तोमास अर्थात् सामबेद रूप इनको जानो अथवा साम वेद मंत्र से स्तुति करो (सवितुःदेवस्य) सूर्य देव के समान है (सवीमनि) उत्पत्ति के लिये लोक में (क्रतुं) संकल्प पूर्वक (सचन्ते) कार्य को पूरा करते हैं (सचितः) चेतन पुरुष के (सचेतसः) हृदय के सहित अर्थात् शुद्ध भाव से स्तुति योग्य हैं अतः यह भी कार्य करने में अन्तःकरण से प्रवृत्त होंगे ॥ ७० ॥

त्रिःसप्त सस्रानद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वतां अग्निभूतये ॥ कृशानुमस्तॄन् तिष्यंसधस्थ आरुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवाम हे ॥ ७१ ॥

(त्रि) तीन बार आवृत्ति (सप्त) त्रिसप्त एकैस हुवा (सस्राः) बहने वाली (नद्यः) नदी है (महीरपः) समुद्र को (वनस्पतीन्) औषधिको (पर्वतान्) पहार को (अग्नि) और आग को वैसे (कृशानुम्) कल्पान्तर अग्नि को (अस्तॄन्) इन

सबों को श्रीहनुमान जी दबा देते हैं अपने सामर्थ से बचा हुवा काल, अग्नि रुद्रादि को (तिष्यं) पुष्य नक्षत्र उपलक्षित समस्त नक्षत्र मंडल को (सधस्थे) इन सबों के साथ स्थित होते हैं इन में यह सर्व लोक निवास करते हैं समस्त ब्रह्माण्ड में (आ) चारो ओर से स्थित वस्तु से जायमान के प्रतिरूत शब्द को करते हुवे ही चलते हैं और गर्जन करते हुवे ही ब्रह्माण्डपिण्ड को लांघने के लिये समर्थ हैं (रुद्रं) रुद्ररूप श्रीहनुमानजी को (रुद्रेषु) एकादशरुद्रों के मध्य में (रुद्रियं) भयंकर कम को करने मे योग्य है शत्रु संहार में पूर्ण समर्थ हैं अतः (हवामहे) स्तुति करने योग्य हैं (ऊतये) नाम अपने कार्य करने के लिये और अपने वाञ्छित कार्य को सिद्धि के लिये समर्थ हैं ।७१।

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यं स्यमर्त्या· सुविक्षु ॥ नाना हनूविभृते संभरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार से आक्रन्तस्य प्रार्थित हनुमान जी का रूप को वर्णन करते हैं (अपश्यमस्य) इनका रूप देखा गया है (महतो) महान् से महान हैं (महित्वं) माहात्म्यको (अपश्यं) मैं देख चुका हूं (मर्त्यासुविक्षु) भूलोक में ही इन का समुद्रको लांघते समय में रूप को मैं देख चुका हूं वैसे (अस्य) यह हनु· मान कामुख फलक मे अनेक अलग 'अलग (विभृते) स्थापित फैला हुवा मुख को (अपश्यं) मैं देखा हूं (ते) वह ही हनु दोनों ओठ (संभरेते) समस्त विश्वका संहार को करते हैं (असिन्वती) ज्योंड़ा रहित अर्थात् दोनों उपर के ओठ और नीचे के ओठ अलग अलग हैं (बप्सती) लटके हुवे हैं (भूरि)

बहुत (अत्तः) खाते हैं। प्रश्वासवेग से ही समस्त को प्रविष्ठ अर्थात दोनों हनु ओठ का संमेलन नहीं होता है ॥ ७२ ॥

गुहाशिरोनिहित मृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ॥ अत्राण्यस्मै षड्भिःसंभरंत्यु त्तानहस्ता नमसाऽधि विक्षु ॥ ७३ ॥

अस्य इन का शिर (गुहा) गुहा में रखा हैं भाव यह कि बानर रूप होने से इन का शिर छोटा है। वैसे ही (अक्षी) दोनों नेत्र (ऋधक्) तल में रखा है अर्थात् गंभीर है। (असिन्वन्) मुख स्थल में संयोग रहित ही है (वनानि) जल (वन) वनस्थान अथवा फलादिक (जिह्वया) रसना से ही (अत्ति) लम्बा करके अत्ति भक्षण करते हैं (अस्मै) में म कालोप होने से (अत्राणि) वेद होने से अर्थात् भोजन का पात्र अन्न रखने के लिये (षड्भिः) छद्दूतों म (संभरन्ति) सम्यक धारण होता हैं। देवगणादि चिन्मया श्रीजनकजा जी की आज्ञा से निश्चय पूर्वक यक्षगण (एनं) श्रीहनुमान जी को सेवन करते हैं ॥ यह महाभारत के वचन से देखा गया है (विक्षु) प्रजागण में (अधि) उपर में (स्थित गंधर्वादि देवगण (नमसा) नमस्कार निमित्त से (उत्तान हस्ताः) बद्धाञ्जली होकर (भरन्ति) इन का सेवन करते हैं ॥ ७३ ॥

प्रमातुः प्रतरंगुह्यमिच्छन्कुमारो नवीरुधः प्रसर्य दुर्वोः ॥ स संनपक्वऽमविदच्छुचंतंरिरिह्वांसं रिप उपस्थे अंतः ॥ ७४ ॥

जैसे पुष्प खोजने तत्पर (कुमारः) बालक (वीरुधः) चमेली वसन्त मालती आदिक औषधियों के (प्रसर्पति) पास में जाता है इसी तरह से श्रीहनुमानजी (मातुः) जननी रूप श्रीजनकजाजीके संबन्धसे प्रकृतरं सर्वोत्कृष्ट तर (गुह्यं) गोपनो. य संदेश को कहनेके इच्छा करते हुवे (उर्वीः) भू प्रदेशको अर्थात् चारोतरफ खोजते खोजते (प्रसर्पत्) पास में गये (सन्) पक्व धानका खेतके तरह दान कार उपमा वोधक हैं वैसेही श्रीजनकतनयाजी की शरीर पीलापन हो रहा हैं जिससे (शुचन्तं) शोचयुत श्रीजनकजाजी का आत्मान शरीरको (अविदत्) जानते भये अर्थात् शोक रूप चिन्हसे (पक्व) क्षेत्र छाया से जानते भये (रिरिव्हां सं) यह हाल देखकर मानो अभिरावण को लेलिहानं लील जायेंगे अर्थात् खा जायेगे (दिपः) पृथवी की अन्तर्मध्यमें (उपस्थे) गुप्त स्थानमें स्थित देखकर यह शेष अर्थात् यही हैं यह निश्चय हुआ (प्रमातुप्रतरं) गुह्य वार्ता करनेकी इच्छा करते हुवे उत्तर मंत्र में प्रकर्षणसे जाना जाता है। समुद्र लांघन करके माताजीसे गुह्यवार्ता करनेके इच्छाकरते हुवे यह चिन्हसे हन गुहाशिर इत्यादि चिन्हों से श्रीजनकजाजी को खोजनेके लिये समुद्रको तरनेके इच्छा कारी श्रीहनुमानजी काही यहरूप वर्णित है और यह वार्ता हृदय ही से जानने योग्य हैं ॥ ७४ ॥

इषु र्नधन्वन्प्र तिधीय ते मतिर्वत्सो नमा तुरुप सर्ज्यूधति ॥ उरु धारेव दुहे अग्न आय त्यस्य व्रतेष्वपि सो म इष्यते ॥ ७५ ॥

इस प्रकार रूप श्रीहनुमानजीका श्रीजीके दर्शनको और

श्री जी हनुमानजी इनदोनोंके संवादको वर्णित करते हैं। (इषु र्नधन्वन्नित्यादिसे वहुत प्रबन्धसे तहां पर यह दशऋच ओंका सूक्त है सोम पवित्र रूप श्रीविष्णुदेवजी का वर्णित है (इषुः) बाण न शब्द उपमार्थमें हैं सयथा वह जैसे (धन्वन्) धनुषिको (प्रतिधीयते) चढ़ाया जाता है इसीतरहसे (मतिः) मेधावी मति शब्दका मेधाबीका अनुपा छात् शीघ्र पाठसे (मेधावी श्रीहनु-मा जी भी प्रतिधीय ते नाम प्रेरित होते है अर्थात् गगनमार्गसे श्रीरूपको लक्ष्य करके प्राप्ति के लिये यह भाव है। वह प्रति हित संमुख गये (ऊधनि) गाके दूध पीनेके लिये (वत्सोनु) वत्स के तरह (मातुः) मा रूपाजीके समीपमें स्तनपिनेके लिये शिशुके तरह (उपसर्जि) समीपमें जाता है जैसे बाणका लक्ष्य मृगादि हाते हैं वैसे नहीं क्योंकि बाण तो बधकर्ता है। साच वह माताजीके (अग्ने आयती) अग्र भागमें आताहै जसे वत्स के संमुख गो पासमें जाती हैं गोकेसमान (उरुधारा) स्थूल प्रेमरूपधारा से (दुहे) दुहा जाता है वैसे ही श्रीहनुमानजी को इष्ट वाक्येन प्रेम पूर्वक वचनोंसे आप्यायित संतुष्ट करती है। ननु शंकार्थ में हैसतीमति अलौकिक नित्य सुन्दरी श्रीजीको पासमें गये हुए हनुमानजीका चित्त विकार कैसे न हुआ यह कहा जाता है श्रीहनुमानजी (व्रतेषु) सत्यप्रतिज्ञावान थे अर्थात् मैं नैष्ठिक ब्रह्म चर्यादि मेंही प्रेमरखूंगा अतः (सोमः) वह महापवित्र थे जैसे सोमयागादिक रूप कर्मके (इष्यते) इच्छा करता है यह कर्मोंसे अन्तः करण परमशुद्ध चित्तका फल रूप पर वैराग्यादिक प्राप्त होता है इसलिये काम विकार का शंकाही निर्मूल है॥ ७५ ॥

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधुमंद्रा-जनी चोदते अन्तरासनि॥ पवमानः संतनिः

प्रघ्नतामिव मधु मान्द्रप्सः परिवारमर्षति ॥७६॥

(उपएव) समीपहीवँ (मतिः) मेधावी हनुमानजी (पृच्यते) संयुक्त अर्थात् उपस्थित होते हैं उससे और श्रीमाता जीकी कर्णमें (मधु) मनोहर अमृत तुल्यवाक्य को "जयत्यति बलो" इत्यादिको (सिच्यते) सुनाते हैं उससे और हनुमानजी में उत्पन्न विश्वासको उसश्रीमाताजीकी वाणी देवतासे (अन्तरा साति) मुख के मध्यमें स्थितहो करके (चोदते) कहनेके लिये प्रेरणा करती हैं (मंद्राजनी) शब्दशास्त्रोंके नामोंमें पठित भाष्य में हैं इसका अर्थ मदकास्यनाम मदकारी का अर्थ प्रेरयित्री सोम रसकी धारा हैं ऐसा कथन हैं । यहां पर यह अर्थ है कि वाणी देवतासे प्रेरित सा वाणी उसको कहती हैं उसे कहा जाता है (पवमानः) यह पवित्र शोधन करती इसलिये पवमान हैं और पापको दूरकरनेवाले श्रीविष्णु देवहैं वह एकभी प्रघ्न तां) विशेष करके वासको करते हैं किस हेतुओंसे काल अग्नि और रुद्र इन सबोंका (संतति) गढा समुदायही (द्रप्स) द्रव द्रव्य की तरह बड़ा हुआ रावणका द्रप्सः कैसे होना चाहे द्रप्सस्य षष्ठि विभक्तिको रूप को सु हुआ है उलोप सके रुत्व उलोप रके विसर्ग अतः द्रप्सः (परिवारम् अर्षति) समुदायको प्राप्त होता है अर्षति प्रश्नार्थ में वैदिक लेट लकार हुवे हैं कठोरकर यह अर्थ हुवे रावण अपने परिवारके सहित भस्म करनेके लिये वव (एष्यति) इच्छा करता है यह प्रश्नार्थ हैं श्रीहनुमानजी से श्रीअम्बाजी प्रश्न करती हैं वह कैसे हैं पवमान श्रीरामजी (मधुमान्) अर्थात् मेरी ऊपरप्रीति युक्त तोहैं यह प्रश्नहै ॥७६॥

संम्राजो ये सुवृधोयज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिविक्षयम ॥ तां आविवास नमसा सुवृक्तिभिर्म

हा आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥७७॥

निच्यते मधु यह इसको प्रदेशान्तरस्थ मंत्र से विवृणोति नाम विस्तार होता है (ये) श्रीरामजी (संम्राजः) चक्रवर्ति हैं (सुवृध) स्वाभाविक बुद्धिमन्त हैं (यज्ञं) विश्वामित्रजी के यज्ञ में (आययुः) पधारे थे (अपरिव्हृता) सरल स्वभाव (दिवि) परशुरामजीके स्वर्गदायिनी पुण्य को (क्षयं) नाशक-कारी (दधिरे) धारण किये हैं। एवं विश्वामित्र यज्ञगमन और परशुराम लोक भंगको अभिज्ञ न चिन्ह का कह करके श्रीहनु-मान जी और अपने को सम्राट् श्रीरामजी का संबन्धि कहते हैं (तान) श्रीराम भद्रजी का (आदित्यान्) सूर्यवंश कहा अ वि-यह उपसर्ग द्वय संबन्ध से वास का आवृत्ति अर्थात् वासको दो कर वास वास हुवे वकेउ हुवे अभ्यास लप और उकार के भी लोप आविवास शब्द हुआ। अर्थात् उवास यह उत्तम पुरुष का एक बचन लिट् में अभ्यास लोप आर्ष होने मं। तान आ उवास उनके समीप में वास को मैं किया हूँ श्री आम्बा जो की प्रति श्रीहनुमान जी का कथन है कैसे बास किये हो यह प्रश्न है (नमसा) नमस्कार से अर्थात् दास भाव से बासे (सुवृ-क्तिभिः) सुतरां स्वभाविक वकयनाम वृजिनानि नामपाप (महा) संकट को हटाते हैं इन कारणों से उनका दास हूँ (अदितिम) इयं वा अदिति। यह मंत्र से। अदिति नाम पृथ्वी से जायमान आप श्रीजी को उद्देश्य करके (स्वस्तये) कल्याण के लिये आप-को पति श्रीरामजी के साथ संयोग कराने के लिये आया हूँ विवासनाम देशान्तर में खोजने के लिये अर्थात् खोजते खोजते आपके पास में प्राप्त हूँ। अथवा विवासनाम समुद्र उलंघन समयमें मैं प्रतिज्ञा किये थे कि जब तक श्री जी न मिलेंगे तबतक फल जल न लेंगे यह पूरा हुवे। क्योंकि मैं श्रीराम दास हूँ

आप श्रीजी को प्राप्त हूँ। अध्यात्म पक्षमें मैं श्री विष्णु भक्त हूँ यज्ञादि कर्मों का अनित्य फल जानकर शुद्ध बोध के करनेवाली श्रद्धा रूपा आप श्रीजी को प्राप्त हूँ ॥ ७७ ॥

अव्ये वधूयुः पवते परिस्त्वचि श्रश्नीते नप्ती रदिते ऋतंयते ॥ हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥ ७८ ॥

एवं पवमान श्रीरामजी संतनिपद पूर्वोक्त इत्यादि से अपनेमें श्रीरामानुग्रह को पृष्ट्वा पूछकर श्रीजी अपनेको विशुद्धताको मंत्र द्वय से कहती हैं (अव्ये) नाम अविनाम नारी रजस्वला उसके बाद उसमें अर्थात् चार रोज के बाद योग्यकर्म अव्यं नाम मैथुन को उस अव्यनिमित में (वधू युः) वधू पुत्र भार्या के साथ यौतिनाम मिलकरके दुष्ट कामी रावण अर्थात् पुत्रवधू के साथ प्रेम करता है (त्वचि) शरीर में (परिपवते) शुद्धयति श्वेत हो गया है मद प्राप्ति से अर्थात् पापकर्म से श्वेत वर्ण का होता है जिससे (अदितेः) अदिति आज्ञो को प्राप्त होकर (ऋतं) सत्यरूप ब्रह्मचर्य को (एति) धारण करता है ऋतंयत् उसके लिये (ऋतं तये) रावण के लिये उसके परिजन कुटुम्बी (नप्तीः) प्राप्ति अर्थात् स्वर्गादि से नप्तय उर्वशी आदि स्त्रियको (श्रश्नीते) शिथिल करता है अर्थात् बलपूर्वक हरण करता है। श्रीजी के अभालमे तप्यमान रावण को शान्ति करने के लिये लं[आया हुवा भी रंभादि स्त्रियको तस्मै रावण के लिये न रुचीकारक होती है यह तिरस्कार कर देता है। यहांपर शंका होती है कि जब रावण पुत्र वधुवोंको । छोड़ता है तब बलात्कार से श्रीजी को क्यों न स्वीकार किया उसे कहा जाता है कि

(हरि) सोम चन्द्र चित्तमनका अधिष्ठाता है अर्थात् प्रेरक है इसी लिये (अक्रान्) इस रावण को दबा लेता है अर्थात् श्रीजी के पास आनेसे रावणका चित्त शुद्ध होजाता है यह परम दर्शन की महिमा है (यजतः) संगति करने वाला रावणादि राक्षसों को अतएव उनका (मदस्संयतो) मन वस हो जाता है उस समय में। दूसरा और हेतु है नल कुवर के शाप से भी डरता था कि जब मैं जबरदस्ती स्त्रीको ग्रहण करूंगा तब मेरा अवश्य मरण होगा पाण्डु राजा के तरह डरता था अतएव (नृम्णा) कामबल से (शिशानो) प्रदीप्त था (महीषो) महान्रावण (न शोभन) नहीं पुष्ट होता है किन्तु कृशही होता है ॥७८॥

उक्षा मिमाति प्रतियन्ति धेनवो देवस्य देवी रूपयंति निष्कृतम् ॥ अत्यक्रमी दर्जुनंवारम व्ययमत्कं न निक्तं परिसोमो अव्यत ॥७९॥

पूर्वोक्त ही का विस्तार किया जाता है (उक्षा) उक्षा इव उक्षा नाम वारधा की तरह उक्षा नाम रेत शेचन काम अर्थात् जैसे पशु वर्य शेचन करता है वैसे ही मनुष्य शेचन के तो (मिमाति) अपन आत्मा का नाश अर्थात् अधोगति होती है। स्वस्त्री भिन्न अरति करने से जिस तरह धेनु की तरह अर्थात् जैसे गौ वृषभ के पास जाती है वैसे ही धेनु की तरह आई हुई दिव्य स्त्री (प्रतियंति) लौट जाती है तब तक ही (देवस्य) धर्मअर्थात रावण कालिये हुवे तपादिका फलरूप (देवी) देवांगना (निष्कृतिम्) अक्रुण को करती है (उपयंति) रावण कृत धर्म रावण के लिये दिव्यांगना समर्पण करके कृतार्थ होते हैं। तपादिक (न) नहीं रावण भोगय र्यन्त व्यापार नहीं करते हैं।

रावण क्यों नही करता है अपने दोषोंके देखने से भोगों को स्वीकार नहीं करता है। देवोंमें देने पर भी सुख होने पर भी अधर्म का आधिक्यसे अपनेको नाश समझता है। अतीति बीता हुआ काल को अर्थात् अर्जुन को श्रीकृष्णावतार में अर्जुन वन्नरूप में प्राप्त था अर्जुन नाम नल कूबर को होने वाले अथवा बीत गया हो क्योंकि कृष्णावतार तो पहले भी तो भये हुवे होंगे अर्जुन शब्द का वाच्यार्थ (अव्ययं) को प्राप्त होते हैं क्योंकि मनसे प्राप्त होता है अतः अव्यय है अर्थात् व्ययनाम अनित्य वस्तु का है और अव्यय नाम नित्य का है। रंभादि संभोग के लिये है (वारं) बालक अपने पुत्रको (अत्यक्रमीत्) रावण अतिक्रमण कर गया है क्योंकि पुत्रबधू रंभा का आक्रमण से अति क्रांतवान हैं कहने का तात्पर्य यह है कि एक समय रंभा शिंगार करके कुबेर के पुत्र नल कूबर के पास जाती थी बीच मार्ग में रावण ने पकरकर उसके साथ प्रेम किया इसी लिये नल कूबर ने शाप दिया कि आज से बलात्कार जिस स्त्री से अनुचित काम करोगे तब ही तुम्हारी मृत्यु अवश्य कर हो जायगा। इसी डर से छाया श्रीजी के साथ बलात्कार स्पर्श नहीं किया। ननु पांडु राजा के तरह मरण भय को भी अति कामुक होनेसे क्यों नहीं त्यजता है अर्थात् पांडु भयत्यक्त कर स्वपत्नी के साथ प्रेम किये अतः मरण हुवे वैसे ही करता। उसे कहते हैं (अत्कम्) यह सतत प्राप्त होते हैं जैसे एक नित्य प्रबासी साधु न शब्द इवार्थ में हैं साधु के तरह (निक्तं) निर्णिक्त अर्थात् छाया श्री जी के विषय में रावण का दृढ़ ब्रह्मचर्य ब्रत था क्योंकि उसको सोमदेव चित्त का अधिष्ठाता है अर्थात् नियामक हैं कहने का तात्पर्य यह है कि छाया श्रीजी के साथ प्रेम करेगा तो अकेले ही मरेगा और राक्षस बच जायेंगे पृथवी भार रह जायगा अतः चन्द्रदेव उसके मन को फेर देते थे (परि) चारों तरफ चित्त का प्रभाव

से दबाव था अतः क्रम से (अद्यत) रक्षा करता है। इसलिये यह हमको नस्पृहा करता है। यदि स्पर्श करे तो तब नल कूबर शाप से शीघ्र ही मर जावे इसीलिये मैं परम शुद्ध हूँ ॥ ७६ ॥

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिर मर्त्योनिर्णिजानः परिव्यतः ॥ दिवंस्पृष्टं बर्हणा निर्णिजेकृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥ ८८ ॥

अथ अपने को शुद्ध सूचित करने पर हनुमान जी से कहती हैं कि तुम पहले मुझ को नहीं देखा था हम को तुम कैसे पहचाना यह पूछने को इच्छा करती हुई श्री जी को लक्ष्य कर श्रीहनुमान जी कहें कि (अमर्त्य) अप्राकृत (हरिः) बानर नहीं हूँ यद्यपी मेरे सदृश पद्यों बानर और भी हैं उन में से एक मैं हूँ यह लक्षणों से आप श्री जी का जाने (अमक्तेन) असंमार्जित स्थान से रहित मलिन (रुशता) कनक तंतुमय सूक्ष्म दे दीप्यमान (वाससा) वस्त्रसे बियोगिनी से (परिव्यत) धारण किये हुवे आप श्री जी का जाना कि यही श्रीरामवामा हैं। यह कैसा है (निर्णिजानः) शोधयन् अर्थात् आप श्री जी को खोजते हुये यह जाना (दिवः) सुख का (पृष्टं) उच्च स्थान को उसकी अपेक्षा से अन्यत् दूसरा महदानन्द स्थान को देने वाले स्वामी नहीं हैं।

"सर्वेषा मानंदाना मुपस्थ एकायनम्"

यह श्रुति से जाना जाता है। उनके सादृश श्रीराम जी का कलत्र आप श्री जी को (नभस्यं) नभस्मादं नाम नभ अव्याकृत शब्द से कहा जाता है और आकाश शक्ति माया यह

चारो पर्याय है यह चारों में किस पहचानो से जाने गये अचिन्त्य शक्ति से पह चाने गये आप (परिव्यत) यह संबंध से जाने गये (निणिजे) कंटक रूप राक्षसों का निरसन से दूर होने से भूमण्डल शुद्ध के लिये (चम्बोः) बानर राक्षसों का (व्रर्हणा) निवर्हण अर्थात् भस्मी के लिये (उपस्तरणं) घृत के तरह श्री-परमेश्वरराम जी किये हैं। वेद होने से अड् नहीं हुवा कृत हुवा अकृत नहीं। जैसे दो अवदान अर्थात् दोनों दल डालने के लिये स्रुचि चमच में जैसे घृत रखकर अग्नि में छोड़ा जाता है वैसे ही दोनों दल होम रूप से धात्रा श्रीरामजी ने आप श्री जी को निमित किया ॥ ८० ॥

सूर्यस्येवरश्मयोद्रावयित्न वो मत्स रासः प्रसुपः साकमीरते ॥ तंतु ततं परिसर्गास आशवोनेंद्राहृतो पवतो धाम किञ्च न ॥ ८१ ॥

जैसे (सूर्यस्य) रविदेव का (रश्मयो) रश्मिकीर्ण (साकं) साथ (द्रावयित्नवो) गमन शील (आशवः) शीघ्र गति हैं और इसी तरह से (मत्सरासः) मैं ही सरति चलने में यह सब बानर मत्सरास है अर्थात् मेरे जातीय बानर एक साथ ही चारो तरफ (ईतते) भेजे गये है वह कैसे हैं (प्रसुपः) प्रस्वर्यातते प्रसुपः अर्थात् इतने शीघ्र चलने वाले हैं कि स्थावरा लोकान्तान् प्रति अर्थात् सूर्य का गमना गमनपर्यन्त चलने में पूर्ण समर्थ हैं। अत आप श्री जी को खोजने के लिये चारों ओर गये हैं उसमें से एक मैं आप के पास आया हूं। वह कैसे हैं (ततं) महान् फैले हुवे हैं जैसे (तन्तुम्) डोरा की तरह "प्रजावैतन्तुः" यह श्रुति से जाना जाता है कि प्रजाको

कारण भूत स्त्री ही है (परि) चारों तरफ खोजने के लिये (सर्गासः) उत्पन्न किया जाने में सर्ग कहा जाता है अर्थात् स्वामी श्रीराम ने ही यह बनाया है। उन सबों के मध्य में हमसे ही आप देखी गयी हो परन्तु यह कहने के लिये असमर्थ ही हूं यह कहा जाता है (नेन्द्रात्) इन्द्र श्रीरामजी के बिना अनुग्रह के बिना कुछ भी प्राणी वस्तुओं को (धाम) श्रीराम का हा गृह रूप आप का (नपवते) शोधन करने के लिये नहीं प्राप्त हो सकता है किन्तु श्रीराम दया मात्र से आप श्री जी को मैं देखा हूं ॥ ८१ ॥

सिं धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गा तुमाशत ॥ शंनोनिवेशेद्वि पदे चतु-ष्पदेऽस्मे वाजाः सोमतिष्ठं तुकृष्टयः ॥ ८२ ॥

इन्द्र श्रीराम जी के बिना कुछ भी नहीं हो सकता हैं यह कहा गया है वही स्पष्ट किया जाता है (सिंधो) गंगा यमु-ना सरयू आदि नदियां (प्रवणे) झरना के गिरने के समान जैसे प्रविष्ट (वृषच्युता), स्वातन्त्र्य लक्षण धर्म से पतन प्रवाह के वश होते हैं इसी तरह से (आशवः) शीघ्र गामि होने पर भी वानर (निम्ने) नीचे पताल के मध्य में प्रवेश करते हुये (वृषा) एक मास में ही श्री जी को शुद्धि को हम सब ले आवेंगे यह स्व प्रतिज्ञात्म कसेवाधर्म से च्युत हो गये हैं अतः प्रतिज्ञा न करने से अवश्य नरक के समान उत्पन्न हुव। वह वानर फिर (मदासः) सोम पवित्र राजा श्रीरामजी को स्तुतियों से माद-यन्त नाम प्रसन्नता के लिये अर्थात उसी के प्रसाद से हम सबों का कार्य सिद्ध होगा (गातुं) पृथवी को (आशत) प्राप्त

होते हुवे गातु पद पृथिवी नाम में पठित हैं भाष्य में वह अन्यथा कथन किये हैं। स्तुति फल को प्रार्थ्यमान को तब तक देखाते हैं (शम्) यह है सोम श्रीराम (नः) हम सबों का सम्बन्धि श्रीराम जी के (निवेशे) गृहमें और दारों के विषय में (शं) कल्याण को स्थित हो सर्वदा। (वेसोनः) हमारे सबों का (द्विपदे) दो पद मानुष श्रीरामादिरूप में (चतुष्पदे) ऋक्ष बानर रूप में शं कल्याण स्थित हो वसे (अस्मे) हम सबों में (वाजाः) संग्राम में (कृष्टयः) शत्रुओं का कर्षण नाम जीतने में समर्थ स्थित होवें अर्थात् उपस्थित होवें। एवं प्रार्थना पूर्वक। आनः पवस्येति ऋचा से सोम नाम धारी श्री विष्णु जी को स्तुति करके उन्हीं श्री विष्णु जी के प्रसाद से बिल से निकलकर भूमि को प्राप्त हुवे हैं॥ ८२ ॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपऽ समव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ॥ जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातुमधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८३ ॥

उस बिल से निकलने पर भी श्री जी का प्रवृत्ति को अलभमान का फिर उन्हीं को ही। "त्रिरस्मा" इत्यादि से उत्तर सूक्त का दशऋच के रेणु नाम का ऋषि देखे हैं सात ऋचों से स्तुति करने वाले हम सबों का भी भय को आने पर यह कहा गया है आठ मंत्र से (शुचिपुनानः) यह एक वचन क्यों जात्यभिप्रायक लेकर के कहा है (शुचिः) स्वभाव का शुद्ध होने पर भी (अरेपसं) निष्पाप भी (तन्व) शरीर को (पुनानः) उपवास से शोधन करते हुवे (हरिः) बानर (सानवि) सानौ नाम मेरु के शिखर में (अव्ये) संगम निमित्त निरन्तर (अध-

(वृष्टः) धावनं नाम दूत रूप को किये क्योंकि दक्षिण गत ब नरों का प्रतिज्ञा भंग से डरे हुवे बानर गण अनशन व्रत से अभय स्थान जो ब्रह्म लोकको जाने के लिये शीघ्रता किये हैं। उनमें (सुकर्मभिः) सुकृत बता संपातिनाम पक्षि से सुकर्मभि बहु वचन पूजार्थ में हैं (त्रिधातु) नपुंसक क्यों वेद होनेसे हैं। वातपित कफ रूप बानर शरीरको (मधु) अन्न आनेके लिये (क्रियते) बनाए क्रियते कैसे होना चाहो करिष्ये होना चाहिये वर्तमानके सामिप्य होनेमें वर्तमानवत् विशेष जानना। अति क्षीण बानर इनके मध्यमें जो जो मरेंगे उनको मैं भक्षण करूंगा मनमें ऐसा विचार करते भये। वह कैसे (त्रिधातुः) रूपवानर (जुष्टः) संपातिजी कहते हैं कि मैं अपने मित्रादिकको प्रीत्यर्थ सब तरह से इन वानरोंके खानेसे पूर्ण तृप्त हम सब होंगे वैसेही (सुपक्व आहारको खानेवाले केम देहवता अग्नि प्रसन्न होती । सुन्दर रस युक्त खानेवाले के रसना देवबरुण प्रसन्न होते हैं। सुन्दर वस्त्रधारीके त्वग् देवता वायु प्रसन्न होते हैं। ऐसे देहके भक्षण से मैं शुद्ध और पुष्ट हूंगा। यह संपातिजीका कथन है ॥८३॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोम घान माविश ॥ पुरानो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्री वद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥ ८४ ॥

खानेके लिये आते हुये देख करके फिर सोम श्रीविष्णुजी की स्तुति करने लगे विशेष रूप से ऋग्द्वय से जीवनेकेलिये हे (सोम) तुम (वृषा) अभिमतफलका वर्षक नाम देनेवाले हो (देववीतये) देवतोंका रक्षक प्रयत स्वनाम प्रयत्न वाले तुम (इन्द्रस्य) श्रीरामजीका (हार्दि) हृदयंगमहो) सोमधानं)

सोमोधीयते अनेनेति व्युत्पत्तिसे योगमार्गाधिकारमें मुख्य निमित्त स्त्रीरूपको (आविश) प्रविश हावो सोमने मैं यज्ञ करूं गी यह जैसे श्रीजी संकल्प करती हैं वैसे और सोमसे देवगण तृप्त होते हैं तथा रावण वधसे श्रीजी उत्साह से संपादन करती हैं (पुरा) पहले (नो) हम सबोंका वधसे इस पक्षी वध से (दुरिता) दुरितानि नाम दुःख पूर्वक मरणस (अतिपारय) संकटसे हम सबोंको पार करो ऐसे कहकरके जटायुजीकी प्रशंसा करने लगे (हि) प्रसिद्ध ताक्ष्य दृष्टि जटायु नामके गृद्ध थे वह कैसे थे (स्वं त्रवित्) श्रीजीके निवास स्थानको जानते हैं (विपृच्छते) श्रीजीकी गतिको विशेषरूपसे पूछते हैं श्रीरामजीके लिये (दिशः) दक्षिण दिशाको इसारे से बताये हैं । वह जटायुजी श्रीरामजीकेलिये मनोर्थ मरगये तोभी कुछ श्रीराम कार्य को किये हैं । हम सबोंने तो अभी कुछभी कार्यनही किया है अभिमरण व्यर्थ ही जान परता है ॥ ८४ ॥

हितो न सप्तिरभिवाजमर्षेन्द्रस्येंदोजठर मापवस्व ॥ नावानसिन्धुमतिपर्षि विद्वाञ्छू-रोनयु ध्यन्नव नोनिदःस्पः ॥ ८५ ॥

हे (इन्द्रो) प्रसन्नात्मन् सोमाभिधपरम पवित्र हे श्री विष्णो श्रीरामभद्रजी (हितो) हितकारी (न) उपमार्थ में हैं जैसे (सप्ति) अश्व (वाजं) संग्रामको जाता है वैसेही तुम (वाजम्) संग्रामको (अर्ष) संमुख जा । उस द्वार हरण कर्ता शत्रुओंको मारकर द्वारके संग होते हुवे (इन्द्रस्य) श्रीराम हविभोक्ताके स्वयंही सामरूप हविसे (जठरम्) उदरको (आपवस्व) प्रवेश हो अर्थात् सोम यागको करो (नाव्वा) नौका

रूप अपनसे जैसे (सिन्धुं) नदी को नाव खेवैया मलाह (अतिपर्षि) पार करता है वैसेही आप हम सबोंको पार करो आप कैसे विद्वान् हैं हम सबों के चित्त को जानते हुये (शूरो न युध्यन्) शूर के समान शत्रुओं का प्रहार करते हुवे (नो) हम सबों का (निदो) निन्दकों को मारिये क्योंकि यह बानर बेचारे व्यर्थ का मारे गये हैं यह इस तरह से कहने वाले राक्षस को (अवस्यः) बिना सोचे मारो स्पृहि हिंसार्थक धातुसे श्नाप्रत्यय हुये हैं और तिप् प्रत्यय हुवा । "वहुलं छंदसि" इस सूत्र से श्ना का लोप हो गया और अर् गुण हो गया पश्चात् "हलङ्याद्" सूत्र से तिपका लोप होगया तब अत्रपूर्वक अवस्यः रूप सिद्ध हुवा ॥ ८५ ॥

आदक्षिणा मृज्यते शुष्म्या ३ सदंवेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ॥ हरि रोप शंकृणु ते नभ-स्यय उपस्ति रे चम्बो ३ ब्रह्मनिर्णिजे ॥ ८६ ॥

यह इसी तरहसे स्वामिभक्त श्रीराम भक्त वानरोंकोजान के संपातिनैभो अनुज ग्राह नाम प्रेम भावसे उन सबोंका ग्रहण किया और कहा कि ऋषभो वैश्वामित्रा आदि नव ऋच सूक्त से (शुष्मी) बलवान (हरिः) बानर (आदक्षिणा) इहां से दक्षिण दिशा भाग में (आमृज्यते) ऐसा संपातिजीने आज्ञा की श्री जी की खोजनार्थी तुम सब दक्षिण दिशा लंका में उनका खोज करो। ऐसा आज्ञा दिया अर्थात मैं गृध्द्र जातिहूं अतः मेरी दिव्य दृष्टि है अर्थात् मैं देखता हूं कि वह अशोक बाटिका में बिराजी हैं यह तुम जानो। इस प्रकार से कहने पर बानर साव-

धान हुवे (आसदम) **आसीदन्ति अस्मिन्** इति (आसी-दम) नाम गृह श्रीरूप श्रीरामजीका (वेति) प्राप्त अर्थात् जानो। उनको प्राप्ति करके (जागृविः) जागरूक अर्थात् सावधान होते हुवे (द्रुहो) द्रोग्धुः नाम पूर्ण रीतिसे (रक्षसो) रावणसे (पाति) अपनेको रक्षा करो यह पहला विशेष धर्म है। वहही वानर (ओपशं) सर्व वस्तुका धारक (नभः) नाम अव्याकृत माया मय श्रीनाम हैं (पयः) द्रववस्तु अर्थात् दुग्धादि वह कैसा है प्रस्रव युक्तको (कृणुते) करता हैं। वत्सको देखकर जैसे गौकी समान श्रीजी श्रीरामजीको देखकर परम प्रेम मयी हो जाती है। किस प्रयोजनके लिये (चम्वोः) वानर राक्षस इन दोनोंका (उपस्तिरे) उक्त लक्षणके लिये उन पूर्व शरीरको दोनोंका संग्राम रूप अग्निमें होमके लियेही है। होमका प्रयोजनको (ब्रह्म निर्णिजे) ब्रह्मणः ब्रह्मांडका कंटक रूप राक्षसका उद्धारकरनेसे अर्थात् नाश करनेसे पृथिवीके शोधनके लिये इस हेतुसे कंटक काही मरणे पर वानरों काभी मरण अवश्यही होगा परन्तु इन वानरोंके पुनः उत्थानको मैं ही करूंगा यह आशय निकला है ॥ ८६ ॥

प्रकृष्टि हेवशूष एति रोरुवद सूयं १ वर्णन्नि रिणीते अस्यतम् ।। जहाति वव्रिं पितु रेति निष्कृ त मुप प्रुतं कृणु ते निर्णिं ज ंतना ।। ८७ ।।

आसृष्ट नाम भेजा हुआ वानर वह कैसे उस दिशाको गये यह इस लिये कहा जाता है वह बानर कैसे है (शूषः) श्रीजीका शूषशोधकहैं **कृष्टि हा इव कृष्ट यः** अर्थात् जैसे

खेत जोतने वाले दो बैलको चीरफार देतेहैं वैसेंही संसारका पीडक राक्षस है उनको मारते है वैसे उनका काल के समान क्रूर स्वभाव हैं (प्रैति) विशेष रूपसे जाते है (रोरुवत्) गर्जन करते हुये (अस्य) इसका कर्षण करन राक्षस गणका (वर्णं) मुख छायाको (असूर्यं) अति क्रूर उन प्रसिद्धको (निरिणीते) निर्गमयति नाम आए हुवे वानर रावणादि दीन भावको करते हैं और (वव्रिम) आवरणनाम अल्प शरीरको (जहाति) त्याग कर बृहत रूपको धारणकरतेहैं तथा (पितुः) वायुदेवका (निष्कृतं) निश्चितको (कृतं) अति वेग किये (एति) प्राप्त होते हैं तिससे और (उपप्रुतं) श्रीजीके पास जानेके लिये) प्रप्लुतं कूदनेको (कृणुते) करते हैं (निर्णिजम्) विशुद्ध भावको धारण कर जैसे होवैसे (उपप्रुतं कृणुत) समीप करते हैं (तना) विस्तान से बड़ा रूप धारण करके सुशोभित होते है ॥ ८७ ॥

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्यो वृषायते नभसा वेपतेमती ॥ समोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ ८८ ॥

उन श्रीहनुमानजीके मार्गके मध्यमें (अद्रिभिः) मैनाक पर्वत समुद्रके मध्यभागमें निकला और उससे कहा कि (सुतः) प्रसुत अर्थात् मेरे ऊपर विश्राम करो ऐसी आज्ञा करते हुये उसको (गभस्त्योः) दोनो बाहुओंसे (पवते) स्पर्श करके चल दिये अर्थात् हस्त स्पर्श मात्रसे उसका सत्कार किये किन्तु उसके पृष्ट भागमें स्थित नहीं हुये। जिससे (वृषायते) वृष की तरह अपने बलको प्रकाश करते हैं। ऐसाही किये (नभसा) आकाश से (वेपते) सर्वत्र देखते हुये चलते हैं (मती) मेधावी हनुमान

जी मतो शब्दसे सुविभक्ति सुका पूर्वसवर्ण अर्थात् दीर्घ हो गया समती अथवा टा प्रत्यय होनेसेभी टा का लोप पूर्व सवर्ण होगया समतीका अर्थ मतीसे (मोदते) आनन्दित हुये अर्थात् इस मैनाकने मेरा सत्कार किया ऐसे जानकर प्रसन्न होते हैं। अतएव (गिरा) वाणी मात्रसे तहां न सके नाम संश्लिष्ट अर्थात् प्रसन्न होते हैं (साधते) अपने कार्यको सिद्धि करते हैं जिससे यह (अप्सुधी) तीर्थरूपमें (नेनिक्ते) अपनेको शोधन करते अर्थात् समुद्रमें स्नान करते भये वैसेही (परामणि) परिमीयते इति परिमा नाम देहका अथवा यज्ञ भूमिको (यजते) तहांपर अपने आत्माको अथवा अपने अन्तर्यामीको यजते नाम पूजा किये जहांपर यज्ञ भूमि है उहांपर समझना कि देवोंको पूजनीय अर्थात् पूजते हैं। अपने सुकृत बलसे हा सब का साधन करते हैं दूसरेके बलसे नहीं करते हैं ॥ ८८ ॥

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिंचंति हर्म्यस्य सक्षणिम् ॥ आयस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्द्धञ्छ्रीणंत्यग्रियं वरीमभिः ॥८९॥

(सहसो) वेगसे (परिद्युक्षं) परित नाम चारों तरफ से समस्त अन्तरिक्षको (क्षिणोति) अल्प करते हैं उसको समस्त अन्तरिक्ष श्रीहनुमानजीके वेगके लिये पर्याप्त नहीं हुआ पर्वतावृधं) पर्वतको बढ़ाते हुये मैनाकको पूर्वोक्त रीतिसे मान देते हुवे उसको (मध्वो) मद कर देवगण (परिसिंचंति) पुष्पवृष्टि द्वारा शोचन किये। वह कैसा उसको (हर्म्यस्य) शत्रु पुरका (सक्षणिम अभिभाव को अर्थात् तिरस्कार किये जिस महल में (गावः)

गो समूह (सुहुताद:) अच्छी तरह से दिया हुवा घास को खाती है अर्थात् वह गौ सम्यक् पालित है (ऊधनि) ऊधः प्रभ-वेद्गीरे अर्थात् स्तन भागसे होनेवाले दूध (अग्रियं) श्रेष्ठ सोम-प्रिय (मूर्धनि) उच्च स्थान प्राप्त निमित्त होनेपर (वरीमभिः) उरुतर नाम जादे बड़ा यज्ञादि हेतुओं से (श्रीणांति) मिला हुआ जिससे तहां पर सोम यज्ञादि प्रवर्तित है। तथा उक्त है। "अग्निहोत्रं च वेदाश्च राक्षसानां गृहे गृहे" ॥८६॥

समीरथंन भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदिते रूपस्थ आ ॥ जिगा दुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यद-स्य मतुथा अजीजनन् ॥ ६० ॥

हमर्थ का सत्ताणका खुलासा किया जाता है (समईम्) अन्त जो मकार उसका लोप हुवा मकार ई में मिला (समी) हुआ (स) खेचर श्री हनुमान जी हैं (अदि ते.) पृथ्वी का (उपस्थे) श्रेष्ठ स्थान पर (आजिगात्) आये अर्थात् सिन्धु के पार को प्राप्त हुवे तहांपर भी (गोः) पृथिवी का (अपीच्यम्) अत्यन्त रमणीय (अस्य) राक्षस का (पदं) स्थान लंका नाम का था (यत्) जिसको (मतुथाः) प्रति दिन मननी सुशोभित गाथा गान होता है और स्तोतव्यानाम स्तुति योग्य हैं ऐसी लंका को शिलिप विश्वकर्माजी (अजीजनत्) उत्पन्न किये हैं उस को (उप) समीप जा करके (ज्रयति) शिथिल को करते हैं यहां इन पदको (रथंन) रथयोजित अश्वके तरह (सं समेत्य) सम्यक् प्राप्त हो करके (अस्य भुरिजो) बाहुका जो (स्वसार) भगिनी तुल्य अंगुली परस्पर में (अहेषत) हेषण अर्थात् फरक करके

जैसे घोड़ा घोड़ाके पास जाकर (हेषते) हिनहिनाताहै इसीतरह से अंगुलियां श्री हनुमान जी की फरकने लगीं अर्थात् भविष्य कार्य की सूचना करने लगी अर्थात् युद्ध होगा आगे चलकर लंका की गुप्त रक्षिका देवी को प्राप्त कर (अहेषत) अर्थात् परस्परमें वाद विवाद होने लगा अतः श्रीहनुमानजी और लंका-देवी दोनों ने चपेटिका प्रहार किया पश्चात् श्री हनुमानजी का चपेटिका से मूर्छित हो गयी ॥ ६० ॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देवएषति ॥ एरिणांति बर्हिषि प्रियं गिरा श्वो नदेवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६१ ॥

जैसे (श्येनो) बाज पक्षी (योनिं) घूसला को गगनमार्ग से (एषति) जाता है इसी तरह से (देवो) श्री हनुमानजी (धिया) स्वबुद्धि से (कृतं) ब्रह्मनाम सत्य संकल्प निर्मित (सदनं) नाम श्रीराम दार रूप गुरु को प्राप्त होते हैं। वह कैसा गृह है (हिरण्ययम्) सुवर्ण (आसदं) गृहं सुवर्ण को प्राप्त करते हैं अर्थात् श्रीरामभद्र दत्त अभिज्ञान अंगुलीय अंगूठी को प्रापक श्रीहनुमानजीको आभिमुख्येन अर्थात् संमुख विराजी हुई श्रीजी को दिये यही श्रीजी आसदन नाम गृह है जैसे यज्ञिय अश्व यज्ञ के संमुख रखा जाता है वैसे ही श्रीजी हनुमान जी के सामने विराजी हैं। (देवान) देवों को प्रीणयन् प्रसन्न करने के लिये (अप्येति) समीप प्राप्त होते हैं। (ईमएन प्रियं) इनको प्रिय करने के लिये देवोंका आप्त तमं नाम श्रेष्ठ इनको (बर्हिषि) यज्ञ निमित्त यज्ञादि मार्ग प्रवृत्ति के लिये (गिरा) हेतुभूत नाम कारण से कुछ गिरा नाम कहने के लिये (एरिणांति) संमुख आकर

उपस्थित हुए हैं अंगुठी का अभिज्ञान प्रदानसे विश्वासहोगया है श्रीजी में श्रीहनुमानजीने श्री प्रभु उक्त संदेश को कहने केलिये प्रारम्भ किये ॥९१॥

पराव्यक्तो अरु षो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गाअभि ॥ सहस्रणी तिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वी रूषसो विराजति ॥ ९२ ॥

बचन को ही कहा (द्विवो) द्युलोक से (परा दूर में (व्यक्त) अक्षयदत्त श्रीराम जी से दिया हुआ अंगूठी ।

"परोदि वो ज्योति दीप्यते" यहांश्रुति से जाना गया भगवत् स्वरूप (अरुषः) शान्त शुद्ध रूप से (कविः) सूक्ष्मदर्शी अतः सवज्ञ है माया विरूपेण अर्थात् स्वेच्छा मानुष शरीर धारी से (वृषा) गृहस्थ धर्म रूप (त्रिपृष्टः) तान धर्म अर्थ और काम अर्थात् धर्म से यज्ञ अर्थ से राज्य काम से रति प्रेम रूप दार हरण से (पृष्ठे) उच्च स्थान में हो जिसका वह त्रिपृष्ठ है (गाः) अभि भूप्रदेशों को प्राप्ति करके (अनविष्ट) नाम शब्द को करते हैं अर्थात् आप के शोक से सर्व दिश शून्य को देखते हुवे हाहा शब्द करते हैं । इन से ।

"मधुमान् द्रप्सः परिवार मर्षति"

यह मंत्र पूर्वोक्ति से जाना जाता है श्री जी से पूछने पर यत् जो श्रीराम जी मेरे में प्रीति मान है अर्थात् मेरा ख्याल तो रखते तो हैं। उसका उत्तर यह है कि (सहस्रेति) वह इस समय में (यतिः) नाम आप श्री जी की प्राप्ति के लिये यत मान हैं (सहस्राणीति) हजारों अर्थात् अनन्त शूरवीरों का नयति

नाम एकत्रित करते हैं वैसे (परायतिः) शत्रुओं को परास्त करने के लिये यत मान है (रेभोन) नाम शब्द को कुर्वाण करते हुवे मानों महोच्च साण्ड कीतरह (पूर्वीरूवस) नाम पूर्व दिशा को आरम्भ लेकर के अस्माकं अपने को आप श्री जी के वियोग काल को आरम्भ कर के इस समय में (विराजते) देदीप्यमान होकर और बहुत सेना को लेकर के शत्रुओं को निमूल करने के लिये पूर्णसमर्थ हैं ॥ ६२ ॥

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्यस यत्राशयत्स- मिना से धतिस्त्रिधः ॥ अप्सायाति स्वधया दैव्यं जनं संसुष्टु तीन सरो संगो अग्रया ॥ ६३ ॥

(अस्य) इस श्रीराम रूप सोम का अर्थात् आनन्द स्वरूप का (वर्णः) जाति क्षत्रिय स्वभाव से "शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं" इत्यादि प्रमाण से जाना गया है (त्वेषं) दीप्त रूप अपने को (कृणुते) करते हैं वह (यत्र) जिस में (समिता) नाम संग्राम में (स्त्रिधः) शत्रुओं को शोधक नाम खोज करके (सेधति) निषेध नाम नाश करते हैं तहां पर उन सबों को (अशयत्) मार कर शयनकरा देते हैं । इस श्रीराम से कोई भी शत्रु जीवता हुवा नहीं बचता है । वह श्रीराम जी अवश्य ही इस रावण को परिवार सहित मारेंगे यह ही मेरा कथन सत्य है (स्वधया) नामपितृ कार्य निमित्त से (दैव्यंजनं) देवता कार्य निमित्त और (अप्साः) जल का (समिता) नाम विभाजक अर्थात् देते हुवे (याति) अनुसरण करते हैं अर्थात् सब- को देवपितृ कार्य को जल से हो करते हुवे और स्वयंभी आप

श्री जी के लिये जल पीकर व्रत करते हैं (तैसे ही) (सुष्टुती) शोभन स्तुति से (संनसते) देव सहित और पितृ सहित (सं) संगति होते हैं अर्थात् स्तुति मात्र से देवपितृओं का आतिथ्य को करते हैं अर्थात् इन दोनों का सत्कार जल से ही इस समय में होता है क्योंकि पास में तो अन्नकत्र और द्रव्यादिक नहीं हैं अतः वह कैसी सुन्दर स्तुति से (संगो अन्नया) सं नाम समीचीन अन्नया नाम गाः अर्थात् वाणी सुरसंस्कारादि मती नाम संस्कृत वाणी से प्रति दिन स्तुति होती है (अग्ने) पुरोवर्ति नी प्रधान भूत हो जिसमें अर्थात् आप श्री जी में वह वाणी तथा उस वाणी से सुन्दर रस युक्त शब्द से गुम्फित रचना विशेष से स्तुति होती है ॥ ६३ ॥

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधित्विषी रधीत सूर्यस्य ॥ दिव्यः सुपर्णो वचक्षत क्ष्मां सोमः परिक्रतुना पश्यतेजाः ॥ ६४ ॥

किसने तुम को दक्षिण दिशा के प्रति जाने के लिये भेजा है यह पूछने के लिये इच्छा करती हुई श्री जी को आलक्ष्य करके स्वयं ही श्री हनुमान जी कहने लगे कि (जैसे) (उक्षा) सांड़वीर्य सेचन इच्छा से यूथा) गोयूथ में (परियन्) घूमते घूमते (एति) आ जाता है एवं (दिव्य) (सुपर्ण) संपाति नाम पक्षी वानर यूथ में भ्रमण करते करते आगये और वचनामृत सेचन काम होकर (अरावीत्) बोले अर्थात् इस शब्द को बोले कि कौन यह है कि जो सूर्य का (त्विषीः) दीप्ती को (अधि) अधिक (अधित) धारण करते हुये अर्थात् हम दोनों भाई हो संपाति जटायु नाम का पक्षी और अरुण देव का पुत्र

है सूर्य को छूने के लिये चल परे उन दोनों का सूर्यदीप्ती से दह्यमान होने लगे उनके मध्य में संपाति नाम का बड़ा भाई अपने पक्षों से जटायु को अच्छादनकर बचा लिये और संपाति का दोनों पक्ष दग्ध होगया यह उपाख्यान श्रीरामायणादि ग्रंथमें विद्य मान हैं जो सुपर्ण (क्षमां) पृथ्वी समस्त को (अवचक्षत) नाम देखते हैं अर्थात् ऊपर चढ़ करके नीचे रखी हुई वस्तु को देखते हैं अपने दिव्य नेत्र से अतः आप श्री जी को देख करके यह कहें कि इसी स्थल में श्री जी हैं हम सबों को कहे थे। इस कारण से यह कहे हैं। "नेन्द्राद्धते पवते धाम किञ्चन,, यह मंत्र से जाना जाता है कि श्रीप्रभु कृपा से ही आप श्री जी का साक्षात्कार हुवा (सोमः) परम पवित्र श्रीराम जी का (परिक्रतुना) उपासना से (जाः) जायां नाम आप श्री जी को वह संपाति देखते हैं ॥ ६४ ॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते ॥उताऽहमस्मि वीरिणींद्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिंद्र उत्तरः ॥ ६५ ॥

एवं श्रीरामानुग्रह अपने में श्री जी में सुनकर के श्री जी हनुमान जी को अपना दुःख रूप अभिष्ट को निवेदन करती है "अवीरामिवेति" यह दो मंत्रों से यह (शरारू) मरने की इच्छा से रावण (माम्) मुझको (अवीरामिव) वीर रहित की समान (अभिमन्यते) मानता है अतः तीरस्कार करता है अर्थात् राक्षसी द्वारा भय कराता है (उत) परन्तु (अहम्) मैं (वीरिणी) वीर वती हूँ (इन्द्रपत्नी) परमेश्वर की सहचारिणी

हूं (मरुत) वायुदेव उनका तुम पुत्र हो (सखा) जिसका अर्थात हमारा सखा हो सा वह सखामरुत्सखा मैं हूं (विश्व-स्मात्) त्रैलोक्य से (इन्द्र) श्रीराम (उत्तरः) सर्वोत्कृष्टतम हैं अत एवं वीरवती मुझको धर्षयन डराते हुये यह रावण मरेगा निःसंशय ॥ ९५ ॥

संहोत्रंस्म पुरानारी समनंवावगच्छति ॥वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९६ ॥

(होत्रम्) अग्नि होत्रादिको (समनम्) समन को ही नाम संग्राम शब्द से कहा जाता है और यज्ञ का नाम है यह उक्त का अथवा यज्ञ रूपा नारी है (पुरा) पहले (अवगच्छति) जाना जाता है वह नारी (ऋतस्य) कर्म रूप यज्ञादि को (वेधा) बनाने वाला (वीरिणी) वीरपति युक्त हो करके (इन्द्रपत्नी) श्रीरामजी की पत्नी जैसे (महीयते) होत्रादि से अर्थात् पूज-नीय होकर तिसी प्रकार फिर इन्द्र श्रीराम जी करें यह (विश्व-स्मात्) त्रैलोक्य मे (इन्द्र) श्रीरामजी (उत्तरः) सर्वोत्कृष्टतम है विशेष है । अध्यात्मपक्ष मेंज्ञह और विवेक रूप अग्नि और जटायु से संरक्षित श्रद्धा रूप श्री जी को ज्ञान रूप श्रीराम ही प्राप्ति के लिये समर्थ है यह भाव है वायु रूप प्राण और सूत्रात्मा ॥ ९६ ॥

इन्द्रंत एक पर ऊं एकं तृतीयेनज्यो तिषा संविशस्व॥ संवेशनेतन्व १ श्चारुरेधि प्रियो देवानां

परमे जनित्रे ॥ ६७ ॥

इस तरह श्री जी ने कहा पश्चात् श्री जी को कहते हैं (भो श्री जी आप और श्रीराम जी देखने में दो विभाग हैं परन्तु आप दोनों दंपति का (इदं) एक ही रूप है अर्थात् कथन मात्र ही दो विभाग से प्रतीति होती है (परऊं) तरने को पहले समुद्र का पार हो जाने पर आप श्री का एक ही दल श्रीराम रूप है इसी लिये (तृतीयेन) मया हम से (ज्योतिषा) प्रभाव सहायता से (संविवश्व) जोड़ा होवे अर्थात् मैं आप को प्राप्त करादूंगा (संवेशने) संयोग में (तन्वः) शरीर धारण का (चारु) शोभन (देवानां) (प्रियो) देवों का प्रिय यज्ञ योग्य (ते) आप के स्वामी हैं और आप (जनित्रे) प्रजोत्पति के लिए स्वगृह में अर्थात् प्रेम रूप गृह में (राधि) स्थित होवे॥

अध्यात्मपक्ष में ॥ निष्काम भक्ति ही श्रद्धा को ज्ञान का उन्मुखी अर्थात् बढ़ाने के लिये योग्य होवे ॥ ९७ ॥

तनूष्टे वाजिन्तन्वं १ नयंती वाममस्मभ्यं धातुशर्म तुभ्यम् ॥ अह्रुतोमहो धरुणाय देवान् दिवीवज्योतिः स्वमामिमीयाः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार कहने पर श्री जी हनुमान जी से कहती हैं हे (वाजिन्) वेगवान बानर (ते) तुमारे (तनू) अंग के प्रति (तन्वं) मैं अपने शरीर को (नयंति) तुमारे स्कन्द पर बैठने के लिये तत्पर होऊं तब (तुभ्यम्) तुमारे लिये (धातु) धातु की तरह शरीर तुमारा अर्थात् तुमारा सप्त धातु का शरीर है और मेरा शरीर अलौकिक नित्य दिव्य धारी होते हुये जानबूझ

कर अपने शरीर का संधानं अर्थात् स्पर्श होने पर (अस्मभ्यं) हमारे लिये जल्दी श्रीराम दर्शन कारीत्व होने से (शम) कल्याणकारी होने पर भी (बामं) कुटिल हो हैं अर्थात् निन्दनीय होगा क्योंकि सार्वभौम राजपत्नी होकर भी पर पुरुष स्पर्श रूप अकीर्ति कर होगा। रावण स्पर्श तो अपने इच्छा से रहित उत्पन्न हुवा अतः उहां पर मेरा दोष नहीं है अतः (अद्भुतः) शत्रुओं से न दबने वाले (महो) महा श्रीरामजी है (देवान्) देव संबन्धि कार्य को करके मुझ को परोत्य स्वीकार करें (मियाश्रामो) मिया नाम मध्यम पुरुष का एक कवच कैसे होगा होना चाहा मिमीयात् व्यत्यसे अर्थात् उलटा पलटा वैदिक प्रयोग होन से कोई दोष नहीं है ॥ ८८ ॥

दूरेतन्नाम गुह्यंपराचैर्यत्त्वाभीते अह्वयेतां बयोधै ॥ उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्राम मघवन् तित्विषाणः ॥ ८९ ॥

श्रीहनुमान जी की पहले कहने के लिये इच्छा हुयी कि कुछ विश्वास कारी चिन्ह श्रीराम जी के लिये अर्थात् यह प्रतीति हो कि यह श्री जी को देख आया है अतः आप अभि ज्ञान को कहिये जिससे विश्वास हो श्री जी ऐसा समझ कर हनुमान जी को कहती हैं हे हनुमन तुमारे बुद्धि में स्थित (गुह्यं) अत्यन्त गोपनी यर्वाता आई है (दूरे) अतः मुझको भी याद आई है कि दूरे अर्थात् वहु कालिक यह वार्ता है (पराचैः) दूर देशीय अर्थात् चित्रकूट के वृतान्त को कहती हूँ कि एक समय में निश्चित जानो यह विशेष गोप्य बात है (यत्) जिस निमित्त (भीते) डरे हुए पृथवी और आकाश (त्वा) तुम को (वयो-

थे) वयस काक पक्षिका शरीर धारी वह मेरी पीड़ाकारी था उसके लिये (अह्वयेताम्) पृथिवी और आकाश श्रीप्रभु जी को बोले तब श्रीराम जी (पृथिवींद्यां) इन दोनों को (उदस्तभ्ना), आप रोकने वाले हो अर्थात् मत डरो रक्षा करता हूँ (अभिके), काकुकपक्षी निमित्त होने पर है (मघवन्) श्रीलक्ष्मीपते (भ्रातुः), आप श्री विष्णु का भाई इन्द्र पुत्र काक रूप धारी । पुत्रान्) बहु बचन वेद होने से है (तिग्मेषाणः) इषीक शीक को दीपित करते हुए आप का अस्त्र दीपित मान देख कर काक भागा समस्त लोक में भागा उस का कोई भी रक्षक नहीं बना अर्थात् श्रीराम द्रोही जान के इन्द्र ने भी न रखा तात्पर्य यह निकला कि काक तुल्य रावण को मार कर हम को प्राप्त करें ॥ अध्यात्मपक्ष में कर्म ही श्रेयकारी है न बोधकारी है विपर्यय होने से बोध भाई है उससे जायमान संशय रूप काक बोध का प्रिय श्रद्धा को कदर्थयन् नाम दुःख करता हुआ बोध से त्रैलोक्य से अपनीत हटाया गया यह भाव है॥ ६६ ॥

देवास आयन् परशूं रबिभ्रन् बाना वृश्चंतो अभिविडिभशयन् ॥ निसुद्र्वंदध तो वक्षणासु यत्राकृपीट मनुतद्दहंति ॥ १००

(देवासआयन्) एक में बहु बचन कैसे बहुबचन भ्रम से वैदिक में (देवाःआयन) देवआए अर्थात देव श्रीहनुमानजी श्रीजी के समीप से बिदायी होकर मार्ग में बिचारे कि दूत काम समाप्त हुआ अब कुछ विशेष काम करना चाहिये क्योंकि रावण क्या जाने श्रीराम प्रभाव अत युद्ध कार्य प्रारम्भ करने के लिये उपाय रचे कि

यह प्रिय अशोक वाटिका है प्रथम इसी को नाश करूं (पर) एवं श्री जी के संदेश को प्राप्त कर चलने के लिये हनुमान तैयार हुए तब शत्रु संपद को नाश करने लगे तब राक्षसों ने रावण के प्रति जाकर कहें कि हे नाथ (शून) हमसबों को ही (अविभ्रन) पकड़कर मारा और (विड्भः) जन संतान रूप प्रजा के साथ और (बाना) वनों को (वृश्चन्तः) तोड़ दिया (अभ्यायन् सुद्रु) सुन्दर चलने वाले अग्नि को अर्थात् शीघ्रगामी अग्नि को पूलबान्धि हुई तालाब जल को (बक्षणासु) घर का एक देश विशेष में सेतु भंगसे नदी में बहने लगा धारण करते हुवे (यत्रा) जहां पर (कूपीटं) वापी आदि का जल है वह भी (अनुदहन्ति) काष्ठ आदि को जलाकर उसकी गरमीसे वापी आदि का जल भी सूख गया है। कूरोट नाम अग्नि स्थान को अथवा काष्ठादि को कूपट से जायमान वह पीछे से और दूसरा भी वज्र पाषाणादि को भस्म करता है **अध्यात्मपक्षमें**

काम का नगर को विषय भोग आराम उससे जायमान जो पुत्र हर्ष उसको श्रीविष्णु भक्ति का शमदम वैराग्य गर्भित होने से अनेक रूप को काटता है ॥ १०० ॥

शशः क्षुरं प्रत्यं चं जगारद्रिं लोगेन व्यभेद मारात् ॥ बृहंतं चिद्दहते रधया निवयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार सुनके रावण सोचता है कि जैसे (शशः) पशु खरगोश (क्षुरं) बाण तीक्ष्ण धार लोह को (प्रत्यंच) अग्र-मुख धार अर्थात् सिधा धारको (जगार) निगल जाता है अर्थात् प्रवेश हो जाता है अंतःकरण को जैसे काटता ही है प्रवेश कर

एवं श्री जनकराज तनया जी को अपने वध के लिये मैं ले आया हूँ (अद्रिम) शैल को (लोगेन) लोहा, से ले आ कर उसको उद्गिरति नाम लीलता है यह लोगो नाम लोष्ट इनने (आरात्) दूर से आ करके (व्यभेदम्) नाश किया हूँ (बृहंतं) महान् अपनी आत्मा को (चित्) निश्चित (ऋहते) क्षुद्र सुख के लिये (रंधयानि) पीड़ाकारी है जैसे (वयत्) जाते हुए (वत्स) बछड़ा (वृषभ) बड़ा सांड़ (शूशुवानः) वर्धमान होता है अर्थात् अधिक बढ़ता हुवा देखा गया है ॥ १०१ ॥

सुपर्ण इत्था नख मामिषायाऽवरुद्धः परिपदं न सिंह ॥ निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अपथं कर्षदेतत् ॥ १०२ ॥

इस प्रकार सुन कर और विचार करके भी रावणने हनुमानजी को बंधवाया यह कहा जाता है (सुपर्णः) पक्षीका तरह आकाशचारी रावण (इत्था) इस प्रकार व्याल ग्राह की तरह रावण अर्थात् सर्परूप श्रीहनुमानजी उनको पकड़नेवाला रावण ॥ नखं न खिद्यते इति (नखं) अर्थात् छेदन और भेदन से जो न होवे वह नखरूप श्रीहनुमानजी को (आसिषाय) ब्रह्म-पास से बांध लिया वह (अवरुद्ध) बांधने पर भी (परिपदं न सिंह) सिंह के समान स्वतन्त्र चारो तरफ चलते फिरते हैं अर्थात् निःशंक जैसे (तर्ष्यावान) पिपासा युक्त जलाशय के सामने (महिषः) भैंसा बन म रहने वाला (चित्) इव अर्थ में है के समान (निरुद्धः) रोकने पर भी रोकने वालों को (कर्षत्) खचते हुये घूमते हैं इस प्रकार से यह (तस्मै) श्रीहनुमानजी के लिये (अपथं) समान रहित (गोधा) परि वेष्टन पाश रज्जु

से बन्धन है तो भी। गुधपरिवेष्टने धातु से टाप् और गुण होने से गोधा बना है। जैसे दुर्बलों से रोका हुआ बलवान् उनसबों को खैंचते हुये इच्छा पूर्वक घूमते भी रहते हैं॥ १०२॥

अक्षान हो नह्यत नोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ॥ अष्टा वंधुरं वहताभितोरथं येन देवासो अनयन्नभिसप्रियम् ॥ १०३ ॥

वह इस प्रकार ब्रह्मपाशों से बन्धन होनेपर भी उन सबों को कुछ भी नहीं समझते हैं तब देवगण प्राथना करते हैं कि आप ब्रह्मपाश का अपमान न करें क्योंकि आप मर्यादा पालक है हे (सोम्याः) हे श्रीराम भक्ताः (अक्षानहः) अक्षनाम रावण का पुत्र को मृत्यु रूप पाश मे अर्थात् बधन्त नाम मारा गय वैसे ही आप (नह्यतन) अपने का भी बधन करावे (रशनाः) ब्रह्मपाश को (इष्कृणुध्वं) स्वीकार करो (आउत) पश्चात् (पिशत) अलग अलग स्वीकार करके खडन करो (अष्टा बन्धुरं) घूठना दोनों बाहु दोनों कंधा और दोनों जंघाओं बन्धते हुवे (रथं) देह को (अभितः) चारों तरफ नगर में (वहतः) ल चलते हुये (येन देवासः) देवगण (अभिप्रियं) अपने इष्ट को (अनयन) नमस्कार करते हुवे पुर में चलते फिरते समस्त लका का जला दिये तव देव-गण अति प्रसन्न होते हैं।

अध्यात्म पक्ष में (अक्षानहः) इन्द्रियजित (अभितः) कर्म उपासना रूप मार्ग में विधि और निषेध रूप पाशों का स्वीकार करके विषय और भोगों को साथ हटा करके प्राप्त पदार्थ बोध भोजनादि को प्राण में स्थापित कर आत्मा का संग रहित भावना करें॥ १०३॥

रक्षोहणां वाजिनमा जिघर्मिमि प्रथिष्ठमुपयामि शर्म ॥ शिशान अग्निः क्रतुभिः समिद्धः सनो दिवा सरिषः पातु नक्तम् ॥ १०४ ॥

एवं बन्धे हुए हनुमानजी के पुच्छ में लगा दिये अग्नि को तब श्रीजी अग्नि देवजी को प्रार्थना करती है (रक्षहणं) राक्षस अक्षय कुमारादिकोंके मारने वाले हनुमानजी को (वाजिनं) हरि बानर को देखकर (आजिघर्मि) क्षरामि नाम शोकसे दोनों नेत्रों में निवर्त्तयामि नाम अश्रु गिराता हूँ अतः मेरा मित्र अर्थात् पुत्र रूप हनुमानजी का पिता वायुदेव का सखा अग्निदेव है (प्रथिष्ठं) प्रथमान प्रसिद्ध अग्निको (शर्म) हनुमानजी के लिये कल्याण करें (उपयामि) पास में जाकर याचना करता हूँ। जैसे तत्वायामि वाक्य होता है वैसे ही उपायामि भी होना चाहिए पकार में अकार का लोप हुआ है अतः नहीं (शिशानः) दीप्यमान अग्नि (क्रतुभिः) यज्ञों से पहले हम सबोंसे (समिद्धः) संदीपित वह इस समय में (नो) मेरा संबन्धिजन हनुमान को (दिवानक्तं) दिन रात्रि वह (सरिषः) मरने से (पातु) रक्षा करें। अध्यात्म पक्ष में अग्नि विज्ञान रूप है तद्यता नाम प्रकाशरूप शक्ति है समस्त कामरूप संपत्ति को नाश कारी है ॥ १०४ ॥

अयो दंष्ट्रो अर्चिषा यातु धानानुपस्पृश जातवेदः समिद्धः ॥ आजिव्हया मूरदेवान् रभस्वक्र व्यादो वृक्त् व्य पिधत्स्वासन् ॥ १०५ ॥

(अयोदं ः) लोहकादांत रूप (अर्चिषः) ज्वालासे (यातुधानान्) राक्षसोंको (उपस्पृश) हे (जातवेदः) हे अग्ने (समिद्ध) काष्ठ हात हुवे (जिह्वया) आप अपने महा ज्वाला-रूप जिव्हासे (मूरदेवान्) मूल देव पहले होनेवाले असुरोंको यह जबतक (आरभस्व स्पृश) स्पर्श कर,नाश करो (क्रव्यादो) मांस भोजी उनको (वक्त्वा) एकट्ठा करके (आसन्) मुखमें (अपिधत्स्व) धारण करलो अर्थात् जलाकर भस्मकरो। ग्रंथा

न्तपक्षमें (अयोदं ः) नाम अनेक वस्तुओंको भी हे अग्ने आर भेद न करनेकेलिये पूर्ण समर्थ हो (अर्चिषा) सात्विक वृत्ति से क्राधित राक्षसोंका ग्रहण करो हे जातवेद बीती हुई अनेक जन्मका दुःखोंको जानते हो ॥ १०५ ॥

यत्रे दानीं पश्यसि जातवेतस्तिष्ठंतमग्न उतवा चरंतम् ॥ यद्धान्त रिक्षेपथिभिःपतंतं तम-स्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ १०६ ॥

(तम्) रावणको अथवा कामको विध्य) भिद्धि नाम दूर करो (शर्वा) समस्तहिंसक प्राणिको अथवा राक्षसको (शिशानः) दीप्त करता हुआ उनदालों के भो (अस्ता) नाम गृहको अर्थात् पषाण और काष्ठ युक्त गृहको अथवा काम विषय के होनेवाला जो माला वा चन्दन और अलंकरादि इनसबोंका हे (जातवद अग्ने) इदा नीं) इससमय (तिष्ठन्तम्) बठने वालेका (उतवा) और (चरन्त) चलने वाले को अथवा (पथिभिः) रस्तासे (पतंतम्) गिरते हुयोका अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षमें (पश्यसि) आप देखता हो अर्थात् आपसे कोई ऐसा वस्तु नहीं

है कि जिनको न देखते हो यह प्रार्थना श्र जो करता हैं ॥ १०६ ॥

**परि त्वाऽग्ने पुरंवयं विप्रं सहस्य धीमहि॥
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हंतारं भंगुरावताम् ॥ १०७॥**

हे (अग्ने) (त्वा) आपको (विप्रं व्यापक (सहस्य) हे तेजस्विन् (पुरं परि) शत्रुनरका चारों तरफसे (धीमहि) स्थापन करता हूँ अर्थात् समस्त नगरको आवेष्टन करलो और कोई वाहर निकलनेके लिये समर्थ न होवे अर्थात् स्थिर करो (धृषत्) दूसरा डरवाता हुआ (वर्ण) वर्णहो जिसका उस ताप को (धृषद्वर्ण) वह धृष वर्णक होता हैं (दिवेदिवे) नित्य (भंगुरं) विनाशिशील जो मायामय अहंकारादि वैसेही तां भंगुराव तां अर्थात् उस विनाशि शीलको (हंतारं) नाश करो (निधीमहि) आपका मैं ध्यान करता हूँ। **अध्यात्मपक्षमें** सब शरीरमें रहा हुआ जा पाप हैं उनको भस्मी करो जैसे वहि र्वासनाऐ न निकले वैसेही करो ॥ १०७ ॥

हरिं मृजंत्यरुषो न युज्यते संधेनुभिः कल शेसो मो अज्मते ॥ उद्वा चमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टु तस्य कति चित्परि प्रियः ॥ १०८॥

इस तरह लंकाको जलाकर वानरोंके साथ श्रीहनुमानज श्रीरामजीके समीप आकरके यह वचनवोले (हरिम्) (मृजन्ति) वानर हनुमानजीने किया हुआ कार्य को जानकर मृजन्ति नाम प्रेमसे श्रीरामजी अपने हस्त कमलोंसे मार्जन किये (अरुषः)

रोषरहित शान्त श्रीराम भद्रजी बहु वचन क्यों पूजार्थ में हैं इन्होंने श्रीजीका यथार्थ अन्वेशनसे प्राकृत कोप अर्थात् उपतक्र कापको स्थिर किये है यह जाना गया है। न शब्द उपरार्थ प है इसका उत्तरमें अन्वय है जैसे (धेनुभिः) धेनुसे होनेवाला जो दूधने (कलशे) द्रोण नाम दोना रूप कलश में (सोमः) नाम दूधका समज्यते नाम संग होता है अर्थात् अतिशय आधा नाय स्थापित्त के लिये। एवं ज्ञो वानर (युज्यते) अर्थात् आरा-ध्य स्वामीके प्राप्त होता है। वह बानर (वाच उद्‌ ईर्यति) वाणीको कहता है (हिन्वते) नाम वर्धयते अर्थात् बधाई करता है स्वामीको जिस कारणसे उसका (मती) बुद्धि परम शुद्ध होती है मती शब्द में दीर्घ क्यों मति शब्दसे सुविभक्तिका पूर्व स वर्ण होनेसे दीर्घ हुआ है उसी कान्ही वर्धन रूप बधाई वाणीकी कहा जाता है (पुरुष्टु तस्य) कश्चित् नाम कोई कुछ (परिप्रियः) यह पुरु नाम बहुतोंने ष्टुतस्य नाम ब्रह्मादि देवों से स्तुति करने योग्य आपश्री का मेरा परिप्रिय नाम चारों तरफसे प्रीणयंति नाम प्रसन्नता पूर्वक उन वाणी रूप स्तुति को कतिचित्) कितना भी किया जाय तोभी आप श्रीप्रभुके लिये थोरी ही है अर्थात् ब्रह्म शिवादि देवभी स्तुति करते करते थक जाते है अर्थात् आपका गुणानुवाद का पार नही पाते हैं तो हम सब कथा हैं ॥ १०८ ॥

साकं वदंति वहवो मनीषिणः इंद्रस्य सोमं जठरे यदा दुहुः ॥ यदीं मृजंति सुगभ स्तयोनरः सनीलाभि र्दशभिः काम्यं मधु ॥१०९॥

इससे पर (वहवः) वहुत (मनीषिणः) धीमन्तबानर

(साक) एक साथ श्रीरामजीको (वदन्ति) कहते हैं (यत्) जिसकारणसे वे वानर सब (इन्द्रस्य) श्रीरामजीके (जठरे) अन्तःकरणमें तृप्ति करनेके लिये (सोमं) प्रिय जल २ मिलाह आ (आदुहुः) दुग्धसे धेनुका किया हैं सोम याग जिसने अतः उन सबों को श्रीरामपर्यन्त गति था अर्थात् वानर नवधा भक्ति द्वारा श्रीराम परम तत्त्वोंको जानते हैं क्योंकि इस प्रकार श्रीराम का दौलूंभ्यको इसलिये कहा जाता है (यत्) जिसने (इम) यह श्रीराम जीका (काम्यं) कामनीयं नाम इच्छित (मधु) अमृत को नरः) मनुष्य की (सुगम) रीतिसे ज्ञान रूप कीर्ण फैला है अतः विशुद्ध चित्त होनेसे उन वानरोंका (दशभि) दशसे युक्त (सनीलाभिः) समान घर होनेसे पांचप्राण और पांच धीवृत्ति अर्थात् पञ्चविषय शब्दादिक विषय सब कर्मोंसे और सब ज्ञानोंसे (मृजन्ति) खजन है तिसप्रकारण मे श्रीराम जीके साथ संवाद करते हैं क्योंकि उन वानरों को महान्पुण्य का फल प्राप्त है ॥ १०६ ॥

अरम माणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरोरवम् ।. अन्वस्मै जोषमभरद्विनं गृसः संद्वयी भिः स्वसृभिः क्षेतिजा मिभिः ॥ ११० ॥

श्रीहनुमानजी श्रीजीके संवाद कोही श्रीरामजीसे कहते हैं " इन्द्रते चार्विय सोम ,, और सोम यह पद चतुष्टयको उत्तर मंत्रसे लाया गया है चारों का अर्थ है इन्द्र श्रीराम जी आपका सोम प्रिया जा श्रीजी सोमा भिषव अर्थात् सोम

श्रीविष्णु यज्ञके अभिषव नाम आहुति देनेके निमित्त भून ऋत्विय-धनाम श्रीजी ऋतु नाम ऋतुकाल जब प्राप्त होताहै यह ऋत्विय ऋतुशब्द से इण धातुसे क प्रत्यय होता है कण लोप होकर इयङ् आदेशका ऋत्विय शब्द सिद्धि होती है इसका अर्थ ऋतु कालमें यह जाना जाता हैकि जाया ही होती है अर्थात् प्राप्ति की योग्य होती है। वह साम श्रीजी आपके वियोगसे अत्यन्त दुखित हैं (सूर्यस्य) रवि देवका (दुहितुः) पुत्रीपतिव्रतासे अति प्रसिद्ध सावित्री की प्रियं) प्यारा (रवम्) यशरूप शब्दको (तिरः) तिरस्कार कर देती है अर्थात् पतिव्रत धर्ममें अत्यन्त श्रेष्ठ सूर्यपुत्री सावित्री उनसेभी अत्यन्त श्रेष्ठ श्रीजीहैं। आप की पातिव्रत्य प्रशंसा है। (गाः) भू प्रदेशके अभितः) चारों ओर व्याप्त होकर (अत्येति) अत्यन्त लांघ कर जातीहै अर्थात् लोकान्तरको जाती है। एवं उनका प्रतिव्रतको कहकरके दुःख को कहा जाता है (आन्वति) पश्चात् (अस्मै] इनको कहा हुआ विधि त्वदीयं आर सोमका प्राप्ति केलिये (विनंगृभः) रावण (जोषं पर्याप्त अर्थात् समस्त वस्तुको जैसे होवे। (अन्व-भरत्) अनुहरति अर्थात् लाकर के देता सब वस्तु जिस श्रीजी के लिये अर्थात् रावण कहता है कि हे श्रीजी यह लंका राज्य आपकेलिये ही है। तथापि वह (संक्षेति) अतिशय क्षीण ही होती है अर्थात् स्वीकार नहीं करती है (जामिभिः) सह च-रियोंसे (स्वसृभि) एक उत्पत्ति स्थानसे अर्थात् वहिनसे (द्वयीभिः) दोनोसे अर्थात् चित्तवृत्ति अर्थात् कारणसे [सं-क्षेति) स्वइष्ट वियोगसे जायमानजो शोकादिसे और अनिष्ट योग अर्थात् राक्षसी योगसे जायमान भयादिसे दिन दिन उनका शरीरक्षीण होता है ॥ १५० ॥

न धूतो अद्रिषु तो वर्हिषि प्रियः पति

गंवां प्रदिव इन्दु ऋंत्वियः ॥ पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसा धनः शु चिर्धिया पवते सोमइ ंद्रते ॥१११॥

(न भिः) राक्षसीसे [धूत नाम अवधूत अर्थात् डरायी हुई (अद्रिषुत) अद्रि पषाण सुत नाम रावणने आज्ञा किया हुआ अर्थात् जिसके लिये पाषाणों से इनको चूर्ण करदो अर्थात् उपलक्ष भय देवाओं ऐसा रावण ने कहा था ऐसे डरानेपरभी वर्हिषि) कुशासन पर निषण्णा विराजी हैं यह उनमें विशेषता धर्म है (प्रियः) आपका (गवां) जितेन्द्रजितेन्द्रिय हैं (प्रदिवः) पुराण अर्थात प्रसिद्ध देवहैं (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्हैं अपने रक्षणमें पूर्ण समर्थहै (ऋत्वियः)ऋत्वियका अर्थ हो चुका है (पुरंधिवान्) बहु बुद्धि युक्त है (मनुष) देवावटी मनुष्य रूप हैं अर्थात सर्वेश्वर है आपका (यज्ञसाधनः) सह धर्म चारी श्रीरामजी है (धिया) अत्यन्त शुचि पवित्र हैं (पवते) अपने आत्माको पवित्र करते हैं अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित है ॥१११॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधंपवते सोमइन्द्रते ॥ आप्राः क्रतून् समजैरध्वरेमती र्वेर्नद्रु षच्चम्वो३ रासंदद्धरिः ॥ ११२ ॥

हे इन्द्र श्रीराम जी आप का (सोमः) सोम याग साधन रूपा श्री नाम की है वही श्री जी वाण रूप से विद्यमान हैं चारो ओर होते हुवे (वाहुभ्यां) नर रूप श्रीराम आप का दोनों भुजाओं से (चोदितः) बाणों को फैंकता हुआ (अनुष्वधं) स्वधा अन्न उसके विकार से होने वाले देह कहा जाता है ।

प्रति शरीर अर्थात् समस्त राक्षसों के प्रति (पत्रते) जाती है अर्थात् सबों के नाश के लिये जाति है। गच्छति यह वर्तमान कैसे होंगे भविष्य होना चाही वर्तमान सामीप्य के सामीप्य में वर्तमान का प्रयोग होता है अतः। वह कैसा है (धारया) नाम व्यवधान रहित प्रवाह से (सुतः) निकलता है त्वंच और तुम श्रीराम (क्रतून्) संकल्पों को अपने श्री जी के और हम सबों के (आ) अतिशय से (आप्राः) पूर्ण करते हो क्योंकि कार्य सिद्धि अवश्य होगी पूरिनवानास इस में भूत प्रयोग कैसे जैसे अगन्म सुत्रः अर्थात् स्वर्ग को गये इस के समान जानना वैसे (अध्वरे) युद्ध रूप यज्ञ में (चम्वोः) बानर राक्षस रूप सेना में (मती) बुद्धि मान शौर्यादियों को (समजैः) सब तरह से आप जितते हो। इस में निरपेक्षही शत्रुओं को मारने के लिये समर्थ हो इस लिये आप यत्नकरैं। कैसे आप सबों से श्री जी देखी गयी है यह शंका होने में श्री हनुमान जीको निर्देश करके बानर सब बोले कि (वेर्नद्रषत्) वी नाम पक्षी न उपमा द्रवृक्ष षत् बैठना अर्थात् पक्षी की तरह वृक्ष पर बैठते भये (हरि) श्री-हनुमान (आसदत्) प्राप्त हुए कैसे हुए जैसे पक्षिवर गरुड़ जी समुद्र लांघ कर जिस देश में जाते हैं उसी देश में श्री हनुमान जी ने पार जाकर श्री जी को देखा था ॥११२॥

अंशुं दुहंति स्तनयंतमक्षितं कविंकवयोऽपसो मनीषिणः॥ समीं गावो मतयोयंति संयत ऋतस्य योनासदने पुनर्भुवः ॥११३॥

ततः पूर्वोक्त कथन के बाद क्या वृत्तान्त हुआ उसको कहा जाता है। अंशुं दुहंति। अंशुम् अर्थात् अंशुयुक्त

पूर्ण होता है वह कौन कौन है अंशु को धारण करने वाले तीन सूर्य वायुः और अग्नि देव यह कैसा है अर्थात् लपट धारी है। अग्निर्वायुः सूर्यश्च केशिनः। इस स्मृति प्रमाण से (आसः) कर्म फलों को पूर्ण करते हैं जैसे गौ का सार भूत पय है उसको दुहा जाता है एवं अग्नि का सार पर दाहकत्व है और सूर्य का सार सर्व विषय का प्रकाशत्व है वायु का शीघ्र गामित्व है और बल युक्त है (मनीषिणो) मनो निग्रसमर्थ बुद्धि मान बानर (दुहंति) ग्रहण करते हैं। वह कैस अंशु हैं (स्तनयंतं) गर्जन करते हुये विख्यात हैं (अक्षितम्) अक्षिणं अर्थात् बल और वेग से युक्त है (कवि) श्रीराम बिरोधी का आक्रमण करते हैं अर्थात् मारते हैं यह क्रम अग्नि वायु और सूर्य इन तीनों का योग्यता को जानने योग्य है। गर्जन करता हुवा अक्षिण नाम प्रमित विशेषण रहितबल और वेग पूर्वक आकाश मार्ग से जाते हैं। जा करके क्या किये उसको कहा जाता है(संयत) समेतीति संयत् नाम एक तृत होते हुवे अचंचल है उनका (ऋतस्य) जल का (योना) योनि शब्द से सुप् सुप् केडा देश हुवा नका रोत्तर वर्ति इकार लोप कर योना हुवा जल का आकर समुद्र आधार में (सदने) गृह निमित्त में (पुनर्भुवः) फिर पृथवी (गावः) पृथवी को पहले श्री ब्रह्मा जी का संबंध से उत्पन्न हुयो थी पश्चात् चतुष्कोण अर्थात् चार कोण का आकार से शिल्पिनल आदियों से उत्पन्न हुवा गाव नाम भूमि शिला रूप आकार में सुघटित बनी (ईम्) लोक प्रसिद्ध की तरह अर्थात् जैसे संसार में पुल बनाया जाता है वैसे ही जानना चाहिये (संयंति) एकी भाव से मिलता है जैसे आंगण में पटाव होता है अर्थात् अविवृत संधि नाम छिद्र रहित शिला निविशंति नाम मिलकर पूल बना एवं स्तब्धजल समुद्र में होने पर भी यह तैसे अंशु को पूर्ण होता है॥ ११३ ॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महोदिवो ३ ऽपा-
मूमौं सिंधुष्वंतरु क्षितः ॥ इन्द्रस्य वज्रेवृषभो-
विभूवसुः सोमो हृदेपवते चारु मत्सरः ॥ ११४ ॥

(दिवो) द्युलोक से भी (मह) महान्बडा (अपाभूमौ) जलों का लहर में। आकाश और समुद्र के मध्य में यह अर्थात् द्यु समुद्र का साम्य देखने से वैसे समुद्रमें अन्त मध्यमें समुद्रका मध्यमे प्रतीत होता है (पृथिव्यानाभा) नाभी शब्द से डा इकार लोगड़ लोप जाना हुआ। पृथिवी की नाभि में उत्पन्न पर्वत हुवे यह सब (धरुणो) धारक हुवे जैसे समुद्रमें नौका की तरह पवंत समुद्राय भी बानरों का धारण के लिये सेतु रूप से स्थित होते भये। वह कैसा नाभ है (सिंधुषु) नदी निमित्त होने पर (उक्षितः) सिक्त नाम धारण शिर में पर्वत मान नदी से कहने का भाव यह है कि जिस पर्वत को बानर गण लाये थे उस पर्वत पर नदी गण भी थी इस लिये (आर्द्रिकृत) नाम भिजोया हुवा अति शय होने से महान् यह थे। इस कारण से दश योजन विस्तीर्ण था और शत योजन आयत था। सेतु में तीन पर्वतों के शिर पर नदी भी थी बहुत है। कैसे जल में शिलों का तरण को कहा जाता है (इन्द्रस्य) परमेश्वर श्रीरामजी का (वज्रः) बज्रकी तरह अप्रति हतगति रोकाबट रहित गति व्यापकनाथी (वृषभो) धर्म विभूति नाम व्यापक (वसूनि) फल हो जिसका वह विभूवसुः है। विभू में दीर्घ कैसे वेद होने से (सोमः) सोम यागादि से जन्मा नाम जायमान (हृदे) जनों का हृदय शोधन के लिये (पवते) जाता है। वह कैसे हैं सोम (मत्सरः) देवों का मदकर नाम हर्ष प्रद है इतियावत्

नाम यह जैसा हो अर्थात् जितना हो। जैसे आग्नेय यज्ञ में धर्म बल से अग्नि अपने में दाहकत्व को त्याग कर शीतत्व धारण करते हैं इसी तरह से यहां पर भी श्रीराम जी के धर्म बल से विशुद्ध हृदय महोदधि भी स्वीयं अपने में डुबाना और भिजाना यह दोनों को त्याग कर कठिनता का धारण किये उससे तहां पर पाषाण तरने लगे यह भाव है ॥ ११४ ॥

जायातप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य-चरतः क्वस्वित् ॥ ऋणावाबिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्त मुपनक्त मेति ॥११५॥

इसके बाद पर दो मंत्रों से राम को ही स्तुति करके अग्नि ससूक्त का "स्त्रक्केद्रप्स" इत्यादि चार ऋचों से पुन सेतु बन्धन को ही स्तुति को वह ऋक् चतुष्टय को आगे व्याख्या किया जावेगा। उसके बाद ऋच् पञ्चक को शेष वचा हुवा को ऊपोद्धात नाम जिस प्रकरण में जो वृत्तान्त हो उसका कथन हो उसे ऊपोद्धात कहा जाता है। इस का व्याख्यान हो चुका है। तदेव वही सेतु बन्धन का कथा को समाप्ति करके श्रीहनुमान जी समुद्र को लांघ जाने पर लंका में जाकर क्या किये यह लंका में पुत्र वध नगर दाहन आदि से तप्त हृदय मंदोदरी और रावण के शोकको कहा जाता है (कितवस्य) धूर्त कपट संन्यासी श्री हरन रावण का (जाया) मंदोदरी दुखित होती है जिससे (हीना) पुत्र से हीनहीं (क्वस्वित) कुच्छ (चरतः)परलोक कर्मानुरूप जाते हुवे (माता) पुत्र रहित है धूर्त रावण भी (ऋणावा) ऋण शब्द कठिन भूमिमें रहा हुआ लंका नाम था वह कैसा था

दुर्ग नाम चारो तरफ कोट और चारो ओर जलका कोट वाला होने पर भी श्रीहनुमानजी का पराक्रम शक्ति आदि को देख कर (बिभ्यत्) भय करता हुवा रावण (अन्येषां) दूसरा जो श्रीरामादियों का भी भय था (अस्तम्) गृह रूपा श्रीजी को धनराज्य को (इच्छमानः) इच्छा करते हुये (उपनक्तम्) सायंकाल में (एति) श्रीस्थानको प्रेमार्थी होते हुये जाताहै। अध्यात्मपक्षमें हर्ष नाशसे सुख स्वादरूप उपाय मातामें उपतप्त होने पर काम रूप रावण मधुमति नामकी योग भूमिको चित्त सावधान रहित पुरुष से योग नहीं होता है वैसे ही दुर्गम लंकारूप आश्रित होने पर भी श्रीराम भक्तोंसे डरता है रजोगुण उदय कालमें पुनः श्रद्धा रूपा श्रीजी को वशी करने के लिये कामरूप रावण जाता है यह भाव है॥ ११५॥

नमामि मेथन जिहील एषा शिवा सखिभ्य उत मह्य मासीत्॥ अक्षस्या हमेक परस्य हेतोरनु ब्रतामप जाया मरोधम्॥ ११६॥

उस रावण का पुनः श्री जी ने "यो वः सेनानी" इस वचन से प्रत्याख्यान किया इस लिये उभय भ्रष्ट रावण पुत्र का और भार्या का पश्चात् सोच करता है (एषा) यह भार्या (मा) मुझको (नमिमेथ) अपमान नहीं करती है अर्थात् हिसादारी नहीं करती है और (नजिहील) मेरे साथ हांसी भी नहीं करती हैं वैसेही (सखिभ्यः) और मेरे लिये और सर्वदा (शिवा) कल्याणरूप ही (आसीत्) थी। उस (अनुव्रताम्) अनुवर्तन करने वाली (जायां) स्त्री को (अक्षस्य) अक्षयकुमार संबन्धि

जो (एकपरस्य) एक पर शत्रु उस हनुमानके हेतु से (अपारोधम्) अक्षयकुमार नाश (हेतोः) कारण से रोकावट हुआ मैं हूं अतः मुझको धिक्कार है अर्थात् मुझको सहन करना ही धिक्कार है अध्यात्म पक्षमें रतिको नाश से कामके वीर्य-बल को धिक्कार है ॥ ११६ ॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रूणाद्धि न नाथितो विंदते मर्डितारम् ॥ अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विंदा मिकितवस्य भोगम् ॥ २१७ ॥

रावण बन्धका कोई उक्ति है जैसे (श्वश्रूः) ससुरार पक्ष श्री गण हितोपदेशोंको (द्वेष्टि) जाया (अपरुणद्धि) रोकावट भोगादि में निरुंधे रोकनेपर (नाथित) उपतप्त करता है (मर्डितारं) सुख देने वाले परदार संग को (नन्दिते) नहीं प्राप्त करता है इससे इसका (कितवस्य) धूर्त रावणका (भोगं) शरीरको नहीं (विंदामि) जानता हूं अर्थात् मैं नहीं देखता हूँ यह काम वेदना से मरेगा । तहां दृष्टान्त है (जरतः) जीर्ण अश्व का समान मृत्यु से कैता कीनने वाले अथवा नीतस्य ले जाने वाला शरीरको नहीं देखता इसी तरह रावणका हाल जानना चाहिये। अध्यात्म पक्षमें श्री विष्णु भक्ति से उपतापित काम भोग आशक्ति को सुखा स्वादलक्षण रूप रतिको और त्याग देता है श्रद्धा को वश करने के लिये न समर्थ होता है अतः इसका स्वरूपः शीघ्र ही नाश होगा यह भाव है ॥ ११७ ॥

सभामेति कितवःपृच्छमानो जेष्यामीतितन्वा

शूशुजानः ॥ अक्षासो अस्य वितिरंति कामं प्रतिदीव्ने दधत आकृतानि ॥११८॥

एवं श्रीहनुमानजी ने लंका का दाह करने पर (कितवः) धूर्त रावण (पृच्छमानः) प्रश्नार्थी होते हुए (सभामेति) सभा को जाता है और कहता है कि मैं दोनों राजकुमारों को जितूंगा ऐसा हंकारसे (तन्वा) शरीर से (शूशुजानः) वर्धमान अर्थात् शरीर को फुलाता है शूशुजान में व के जगह में ज हो गया है (अक्षासः) अक्षय कुमार सदृश कनिष्ट भाई विभीषणादि (अस्य) इस रावणका (कामं) मनोरथको (वितिरंति) विशेष रूपसे तिरस्कार करते है। वहरावण कैसा है जिगीषु जितने की इच्छा रखता है प्रति जिगीवे नाम श्रीरामजीके लिये (कृतानि) नाम श्रीजीरूप पणि द्रव्य नाम सरत रूप द्रव्य हैं इनके लाभके लिये लक्ष्यकर (आदधतः) समर्थन करता हुआ। अध्यात्म पक्षमें सभारूप शास्त्रको अक्षास नाम प्रमाणोंको प्रति दीव्ने नाम बोधके लिये शेष प्रथम की तरह है। अत्रप्रास्य धारा

यह मंत्र पठनीय है सब वह व्याख्यान रूपसे उपोद्धातही तहांपर हैं सखी श्रीविष्णु देवका जाया श्रीजी को रोती हैं कि भगवान् क्या न आवेगे किन्तु आवेंगे ही॥ ११८ ॥

उदीर्ष्वा तः पति वती ह्येषा विश्वा वसुं नमसा गीर्भिरीळे॥ अन्या मिच्छपि तृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥११६॥

ऐसा कहकरकेभी सभामें बैठने वाले रावणको प्रार्थना करते हैं कि अतः आप श्रीजीका अभिलाष रूप निर्बंधात् नाम आग्रहको (उदीर्ष्व) त्यागकर निवृत्त होवो (हि) जिससे (एषा) यह श्रीजी अद्वितीय (पतिवती) वीरपति वालीहैं और उन्हीका भार्या हैं (बिश्वावसु) नामका गंधर्व था वह रावण व्यामोहकारी अर्थात् सलाह देनेवाला था अथवा समस्त धन हो जिसमें यह अवाप्त सकल काम रावणको नमसा) नमस्कार के साथ गीर्भिः) वाणीसे (ईले) स्तुति पूर्वकमैं प्रार्थना करता हूँ (अन्यां) पिताके घरमें रही हुयी (अप्रतां) स्वभावसे सुशील कन्या की इच्छा करो (व्यक्तां) स्पष्ट उत्पन्न हुआ स्त्रीचिन्ह जिसका (सः) नामसा वहस्त्री (ते) आपका (भागो) भोग्या (जनुषा) जन्मसे) (तस्य) नाम तां उसस्त्रीको (विद्धि) प्राप्त करो ॥ ११९ ॥

उदीर्ष्वातो विश्ववसो नमसे लामहे त्वा ॥
अन्या मिच्छ प्रफर्व्य १स जायां पत्या सृज॥१२०॥

यहां पर द्वितीय मंत्रमें इच्छ यह अन्त तक पहले के समान अर्थ जानना चाहिये। प्रफर्व्यं) प्रकर्ष नाम विशेष रूप से फलाभ्यां नाम दोनों स्तनों से रंहतिनाम सुशोभित होती हैं अतः प्रफलवती हैं। प्रफल शब्दमें लकेरहोगया लका रोत्तर-वर्ति अकारके लोप हुआ है वेद होनेसे प्रफर्व्यं सुन्दरस्तन युक्त अर्थात् श्रीजी अपने दोनों स्तनों से अर्थात् एक स्तनसे नित्य मुक्त पुरुषोंको पालन करती हैं दूसरों से चतुर्दश भुवन वर्ति जीवोंका पालन करती है जननी रूपमें अतः सुन्दर स्तन कहा स्तन शब्दसे पालनमें तात्पर्य हैं अध्यात्म रामायणमें ।

कहा है कि स्त्री शब्दका वोधक आप श्रीजी हैं और पुरुष-वोधक श्रीरामजी हैं अतः आप पालक हैं (जायां) श्रीजीको (पत्या) श्रीरामजीको (संसृज) साथ करो अर्थात् इनको लेजा करके उनको दे दो यह कथा सभा सद कहते हैं रावणसे। अध्यात्म पक्षमें वोधरूप प्रियाको श्रद्धाको त्यागकर विषय सुख दायिनी श्रद्धाको आश्रय करो यह भाव है (वोधके साथ करते हुए आप काभी कल्याण होगा। क्योंकि कहा है कि "बुद्धानां चते-षां सर्वेषु लोकेषु काम चारो भवति" अर्थात् समस्त मनोरथ ज्ञानीका पूर्ण होता है यह सर्व कर्म फल भागित्व के सुननेसे ॥ १२० ॥

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्ये नाम् ॥ उतो त्वस्मै तन्वं १ विसस्रे जायेवपत्य उशती सुवासाः ॥ १२१ ॥

जब इस प्रकार ज्ञानोपदेश रावणादिमें करनेपर फिर क्या वृत्तान्त हुआ उसको कहा जाता है (उतत्वः) और एक प्रहस्तादि सेनापति (पश्यन्) देखते हुए एक हनुमान ने किये नाशको देखते हुएभी (वाचम्) वचनका अर्थको (नद दर्श) न देखा गया क्योंकि स्ववल घमण्डसे (उतत्वः) और एकभी रावणादि शृण्वन्न) शुक सारणादि के मुख से श्रीरामवल सुनकर भी मानो (न शृणोति] नही सुनता है अर्थात् उस प्रवल वचनोंको मनमें न धारण करता है क्योंकि रावण दुारा ग्रह नाम हटसे ग्रसित था अतः (उतो) औरभी (त्वस्मै) दूसरा

विभीषण के लिये (तन्वं) स्वरूप वाणीको अपना स्थार्थ सिद्ध करनेके लिये प्रगट करता है जैसे (उशति) का मयमान (जायेव) स्त्री के समान (पत्ये) पति के लिये (सुवासाः) नाम रजोधर्म वाली अर्थात् रजोधर्मके बाद अपने गोंपनीय स्थान को दिखाती है। तद्वत् नाम इसीकी समान दूसरा जो विभीषण श्रीरामप्रभाव न देखे थे तो भी सुन करके श्रीराम प्रभाव देखते भये ॥१२१॥

पश पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तु राणो अप-रेभिरेत॥ अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिंद्रः शरद-स्तर्तरीति॥ १२२ ॥

उसके बाद क्या करता भया उसे कहा जाता है (पूर्वे-षाम्) जन्म बधु रावणादि का (सख्या) मित्र संबन्धि स्नेहको (परावृणक्ति) दूर करते है विभीषणादि क्योंकि विशेष नाम रूप से (तर्तुराणः) मरण भयसे तरणे के लिये (अपरै) दूसरा जो कार्य वन्धु श्रीरामजी के साथ मित्रता करने के लिये (एति) उनके पास जाते हैं (अनानुभूतीः) रावणादियों का भ्रांतिज्ञान हैं कि में अवश्य कर शत्रुओंको जितुंगा यह इस प्रकार ज्ञानोंको (अवधून्वानों) दूर करता हुआ (इन्द्र) विभीषण यह होने वाला कदनं नाशको देखते हैं कि यह। इदं द्र नाम इदंद्र एव इन्द्र बिभीषण१ (पूर्वीशरदः) कालरूप मृत्युको (तर्तरीति) अतिशय अमरपनको प्राप्ति करके (तरति) नामस्वीकार करते हैं। यह ऐसा यह 'तमिदं द्रं स ंत मिंद्र इत्या चक्षते' यह होते हुये इन्द्र इनको इन्द्र कहा जाता है इति श्रुति से देखा

गया मंत्र इन्द्र शब्दका निर्वचन नाम श्रेष्ठमें होता है। अध्यात्म पक्षमें पहले होने वाले जो कामादियों का और दूसरा शमदम आदियों का अनानुभूतो नाम देहादि में भ्रम से आत्म बुद्धि होती हैं ॥ १२२ ॥

अनृक्ष राऋजवः संतुपंथायेभिः सखायो यंतिनोवरेयम् ॥ समर्यमासंभगोनो निनीयात्सं जास्पत्य सुयममस्तु देवाः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार कुर्वतां करते हुए अर्थात् चलते हुए लंका से विभीषणा दियों के पुरोहित गण स्वस्त्ययन नाम कल्याण कारी मंत्रोच्चारण करते हैं कि ऋग्भ्यो अर्थात् वेद मार्ग से (क्षरन्तिते ऋक्षराः) अर्थात् भ्रष्ट होने से वह ऋक्षराः नाम राक्षसः कंटक रूप उन से रहित (अनृक्षराः) इसी लिये ही (ऋजवः) सिधा अथवा कोमल (पंथाः) मार्ग रूप (सेतु) पूल (येभिः) जिन रास्तओं से (नो) हम सेबों का (सखाय) परममित्र (वरेयं) वरं नाम श्रेष्ठ स्थान को (यंति) चलते हैं उसको सर्वोपरि बैकुण्ठ लोक में स्थित होते हुए भी वही बेकुण्ठा धिराज भूमं-डल में स्थित श्रीराम जी को (यंति) पास हम सब जाते हैं अतः (अर्यमा) नामदेव गण (नः) हम सबों को (संनिनीयात्) श्री राम जी के साथ अर्थात् ऐकय नाम संदेह रहित भाव को प्राप्त होवे और (संभगः) नाम देव गण हम सबों को श्रीराम जी के साथ प्राप्त करावे तिस प्रकार (जास्पत्यं) श्रीसीताराम जी का दांपत्य धर्म (सुयमम) एक तृत हे देव गण हो ॥ १२३॥

प्रत्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्यनत्वा

बध्नात् सविता सुशेवः ॥ ऋतस्य यौनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्ठांत्वा सहपत्यादधामि ॥ १२४ ॥

चलते हुए विभीषण श्री जी को संतोष दायि वचनों को कहते हैं कि (त्वा) आप श्री जी को (वरूणस्य) वरूण देव का (पाशात्) प्राणि दुःख दाता बन्धन से (प्रमुंचामि) मैं छुड़ाऊंगा जिस पाश से आप श्री जी को (सविता) कर्माध्यक्ष देव (अबध्नात्) बन्धन रहित से (सुशेवः) सुन्दर सुख (ऋतस्य) कर्म फल का (यौ नौ) भोग स्थान में (सुकृतस्य) पुण्य लोक स्थान में (अरिष्टां) दुःख रहित (त्वां) आप श्री जी को (सह) साथ (पत्या) पति के साथ (दधामि) मिलाऊंगा आप चिन्ता न करें । दधामि वर्तमान कैसे होना चाही भविष्य वर्त मान के सामीप्य होने पर वर्तमान निर्देश किया जाता है ॥ १२४ ॥

आसूर्यो अरूहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ॥ उद्वाननावमनयंत धीरा आशृण्वती रापो अर्वागतिष्ठन् ॥ १२५ ॥

विभीषण श्री जी को संतोष दायक वचन कहकर श्रीराम जी के शरण में जाने पर बाद सेतु को करके अतरत् इसे कहा जाता है यह (सूर्य) सूर्यवंशी श्रीराम जी (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप (अर्णः) समुद्र जल को (अरूहत्) किस प्रकार से इस पार से उसपार गये यह कहा जाता है (यत्) जिससे (हरितः) पर्वततत्व के समान धर्म से अर्थात् विराट् रूप श्रीराम प्रभु जी

के अंगुलि रूप पर्वतों को (अयुक्त) सेतु रूप से योजित किये (वीतपृष्ठाः) उच्च नहीं किन्तु समान सेतु था वह (धीराः) श्रीहनुमानादिक (उद्धाननावम्) उदक देश से अर्थात् जल में रहा भयानाव के समान (अनयन्त) ले आये ! अगाध जल में से कैसे ले आये क्योंकि डुवा था उसके उपर को कहा जाता है (आशूरवतीः) आज्ञा (कारीनी आपः) समुद्र रूप (अर्वाक्) नीचे जल बैठे हुए उपर स्थान को दास की तरह करते भये ॥ अध्यात्मपक्ष में सूर्य आत्मा है शुक्रमर्ण ब्रह्म समुद्र है हरित इन्द्रिय रूप नदी है जल रूप मन है॥ १२५ ॥

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ॥ अत्राजहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्त रेमाभिवाजान् ॥ १२६ ॥

(अश्मन्वती) पाषा न रूप तन्मयी सेतु नाव के समान (रीयते) आक्रम्यते चढकर जाता है (संरभध्वम्) शीघ्र (उत्ति-ष्ठतः) उपरको उठा (प्रतरता) समुद्र को कोई सेना पति कहते हैं कि हे (सखायः) हे मित्र गण (अत्रा) आगे में स्थित लंका में (ये) यह (अशेवाः) हम सबों का दुःख रूप क्रूरस्वभाव युक्त (असन्) असत् रूप से तेजस्वी बने हैं उन सबों को (जहाम) मारने के लिये हम सब चले यह विशेष कथन है (अभि) अभि संमुख (वाजान्) संग्राम को (शिवान्) जय प्रदान को हम सब (उत्तरेमः) पार हो कर कृत्य कृत्य होवे । अध्यात्मपक्ष में अश्म रूप शरीर को अस्ति इस में वह

अश्मवती नाम गलित देहाभि मान ध्यान रूप नाव है ॥१२६॥

उरूं यज्ञाय चक्र थुरूलोकं जनयंता सूर्य मुषासमग्निम् ॥ दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतना ज्येषु ॥ १२७ ॥

समुद्र तरणान्तर बाद राक्षसों के साथ युद्ध में प्रवृत्त होने पर हे (नराः) नर रूप दोनों श्री प्रभु (यज्ञाय) देव हित के लिये (ऊरू) महान्त (लोकं) लोक राक्षस रूप अंधकार को बाण द्वारा नाश से प्रकाश को (चक्रथुः) करते भये (उ) निश्चत यतः जिससे (सूर्यम) सूर्यादियों का (जनयंता) आप श्री प्रभु उत्पन्न किये है वैसे (दासस्य) रावण की (मायाः) नाग पाश बंधा हुआ (जघ्नथुः) नाश किये आप दोनों प्रभु (वृषशि प्रस्य) महोक्ष सदृश शरीर धारी आप का (पृतनाज्येषु) पृतना सेवा रूप आज्य नाम घृत सेना रूप घृत को बाण रूप अग्नि में हव्य करिये। अध्यात्मपक्ष में यज्ञ उप योग के लिये माया का विक्षेप रूप लय है ॥ १२७ ॥

हरयो धूमकेतवो बात जूता उपद्यवि ॥ यतंते वृथगग्नयः ॥ १२८ ॥

(हरयो) बानर (धूमवत्) धूसर की समान है (केतुवत्) ऊर्ध्व किया है पुच्छ जिनहों ने वह धूम के तब कहाते है (वातो जूतो) बात नाम अति वेग से जूत नाम प्रवृत्त हुवे हैं जिन्होने वह बात जूत नाम बानर गण है (उपद्यवि) वी नाम अन्तरिक्ष में उपद्य नाम उद्योग युक्त (यतन्ते) अन्त रिक्ष चारी राक्षसों

को मारने के लिये प्रयत्न करते हैं (वृथक्) पृथक् पृथक् प्रत्येक यहाँ मारने के (अग्नयः) जैसे अग्निके समान अर्थात् अग्नि दूसरे की अपेक्षा नहीं करता है वैसे ही बानरगण एक एक के अपेक्षा नहीं करते हैं समस्त राक्षस कुलोंको नाश करनेके लिये समर्थ है **अध्यात्म-पक्षमें** हरयः इन्द्रियगण हार्दाकाश रूप ब्रह्ममें यत्न पूर्वक प्रवेश करनेके लिये यह शेष है अग्निवत् निर्दोष है ॥१२८॥

रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय ॥ इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥ १२९ ॥

रूपमिति । रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव रूप रूपके प्रति रूप हुआ अर्थात् जितना रूप राक्षसों का रूप था उतने उनके प्रतिकूल रूपों को धारण किये (तदस्य) श्रीरामजी का अनेक रूप हुआ (प्रतिचक्षणाय) कहने के लिये अर्थात् विरोधिरूप दूसरा नाशके लिये हुए । ननु शंकार्थ हैं जब श्रीरामही विश्वरूप अर्थात् समस्त रूप हैं तब उन रूपों के विषय में अर्थात् अपने अवयव के समान अन्योऽन्य परस्पर बाध्य बाधक भाव युक्त नहीं है इस शंका को कहा जाता है (इन्द्रो) श्रीरामजी पासा न्यायसे अर्थात् (अदितिः पाशान्) में जैसे बहुवचन है वैसेही (मायाभि) में बहुवचन है क्योंकि राक्षस बहुत है अतः बहुत हुये इसलिये कोई दोष नहीं है । और वैसे सत्त्व प्रधानसे देवरूप हैं रजप्रधान से असुररूप हैं तमः प्रधान से राक्षस रूप है यह (पुरु रूप) बहुत रूप (ईयते) होते हैं, ।] जैसे सर्वरसःका उपादान नाम मुख्य जल का स्वाभाविक माधुर्य हैं इक्षु नाम ऊख द्राक्षादियोंमें

अतिशय होकर अभिव्यजते नाम प्रकट होता है। और जैसे निम्बु मरिच आदियों में (तद्भि भूय नाम उसके अनुकूल उपाधि होकर अम्र खट्टा कटुकत्वादि को प्रथते नाम प्रसिद्ध होता है वैसे ही यह जानना चाहिये। इसलिये उन सबों का वाध्य बाधक भाव होता ही है। (हि) जिससे (अस्य) श्रीराम जी (शतादश) सहस्ररूप अथवा अनन्त रूपों को धारण करते भये (हरयः) श्रीहनुमानादि वानरगण श्रीरामजी के मनोनुवर्ति होकर शरीर रूप व्यूह रचना करके जैसे योगी अनेक शरीर धारण करके अनेक कर्म करता है वैसे ही सन्नद्धानाम कटिबद्ध होकर देखे जाते हैं यह विशेष भाव है। श्रीराम ही सर्व वानर रूप होते भये। और वैसे श्रुति है "अयं वै हरयोऽयं वैद-

शचशतानि च सहस्राणि च बहूनि चानंतानि च"

यह श्रीरामजी बानर हुये यह दश अवतार हुये शत अवतार हुये सहस्र रूप हुये और बहुत अनन्त रूप धारण किये ॥ १२९ ॥

यः सृविंद मनर्शनिं पिप्रुं दास महो शुवम् ॥ वधी दुग्रोरिणन्नयः ॥ १३० ॥

(यः) जो श्रीरामजी (सृ विं दं) सरन्ति पतन्ति नाम चले गिरे विंदु की समान वर्तुल गोली की तरह शिरोरुहा नाम मस्तक का लौटी हुई बालरूप अवयव हो तिसका वह सृ विंदव है सृ विंदु होना चाही सृ विंदव कैसे अदन्त वैदिक होने से। इसीलिये ही (अनर्शनिम्) प्राप्ति रहित ऋष धातु गति और स्तुति अर्थ हैं इस सूत्र धातु का रूप है (पिप्रुम्) पिप्रुं नाम शरीर में रहा हुआ जैसे चर्मकील नाम तिल को समान जगतमें मषी स्याही की आकार काला चिन्ह रूप (दासं) रावण को

सर्प की तरह विष सहित उच्छ्वास को (वधीत्) मारते भये (उग्र) जिसने समुद्र संबन्ध जल (रिणन्) सेतु करनेसे हिसन् दब गया है उसका किया हुआ प्रवोचत बोले पूर्व मंत्र के साथ अन्वय हैं 'सृ विंदादय पंच राक्षस' है सृ विद अनर्शन पिप्रुम् दास और अही शुवम् यह है। अध्यात्म पक्ष में सृविंदं निर्वीयअनर्शनिचित्त निरोधसे अप्राप्त हो पिप्रु प्रसर्पणशील लोभ कुंभकर्ण दास दस्यति दासं यह उपलक्षण है काम रावण अही शुवम् क्रोध इन्द्रजित जल देहरूप रिणन् लीन उसको मारे उसका योगी जन किये ॥ १३० ॥

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ॥ सुप्रकेतै द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नु-शद्भिर्वर्णै रभिराम मस्थात् ॥ १३१ ॥

(भद्रः) श्रीरामभद्रजी (भद्रया) श्रीजीके साथ (सच-मानः) सावधान होकर (आगात्) आए दंडक आरण्य में। यह अर्थात् (स्वसारम्) भगिनी रूप अंगुली वहीन की समान श्रीजी का हाथ को ग्रहण के लिये (जारः) रावण (पश्चात्) श्रीरामजीके न रहने पर (अभ्येति) पासमें आया यह पूर्वोक्ता-नुवाद वत् हैं। तिसके बाद रावण को मरणे पर (जाया गार्ह-पत्यम्) स्त्री रूप गार्हपति हैं। यह श्रुति है। 'जाया सह-चरोऽग्निः' स्त्री के साथ अग्नि (द्युभिः) स्वर्गलोक साधन रूप से द्यु शब्द वाच्य श्रीरामजी के दारा के साथ (रामम्) श्रीरामजी का संमुख (अस्थात्) खड़े हुए (सुप्रकेतैः) शोभन

[1] मन मानसिक विकार के लेशमात्र से रहित होकर (तेरह ये।)

चिन्होंसे यह दार निर्दोषत्व सूचित हुआ (वितिष्ठन्) स्थित हुए यह संबंध बैठा था यह अर्थ है (उर्दाद्धः) देदीप्यमान (वर्णः) वर्णों से अर्थात् लोहित आदि वर्ण रूप ज्वालाओं से उपलक्षित था यह अर्थ पुनः श्रीजी को अग्निदेवजी दिये यह मंत्रान्तरमें भी देखा गया है ॥ १३१ ॥

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्म किल्विषेऽकूपारः सलिलोमातरिश्वा ॥ वीलहुराश्तप उग्रो मयो भू रापो देवीः प्रथम जा ॠतेन ॥ १३२ ॥

(ते) वे सब (प्रथमा) प्रसिद्ध देवर्षिगण अग्निदेवमें ले आये हुई श्रीजी का (ब्रह्म किल्विषे) ब्रह्मचर्य रक्षणरूप दोष विषय में (ऋतेन) सत्यपूर्वक शपथसे (अवदन) पूर्वोक्त सब बोले क्या बोले यह श्रीजी परम निर्दोष है यह अपने तपरूप शपथ पूर्वक श्रीरामजी कोक हैं। उन सब कौन कहै (अकूपारः) नाम समुद्रः (सलिलः) निर्मल जलाधिप ये सब और (वीलहुराः) कालचक्र का चालक जो निमेष आदिकी अधिष्ठात्री देवता (तपो) विचार रूप धर्म (उग्रः) रुद्रादिक देव (मयः) सुखदाता सात्विक देव अर्थात् सुख होता है जिससे यह (मातरिश्वा) वायुदेव (आपः) सप्त समुद्रादिक (प्रथमजा) प्रथम होने वाली पृथिवी इनसे जायमान (देवीः) देवी श्रीजी की सत्यपक्ष ले करके ये पूर्वोक्त देवगण कहें कि यह परम शुद्ध हैं ॥ १३२ ॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्म जायां प्रायच्छद हृणीयमानः ॥ अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निहोता हस्त गृह्यानिनाय ॥ १३३ ॥

वे सब क्या कहैं यह कहा जाता है (प्रथम) पहले (राजा) अग्रगस्य (सोम) पवित्र आदरणीय (ब्रह्म जायां) बृहस्पति का स्त्री को पुनः हरण करके उसमें पुत्रोत्पत्ति करके पश्चात् (प्रायच्छत्) दे दिये (अहृयमानः) लज्जारहित दूसरों से स्त्री ताराके विषयमें पातिव्रत धर्मसे अपने किये हुए दोषोंके अभाव से और तारा का (अन्वर्तिता) अनुमंता नाम पक्षपाति जो (वरुण मित्र) नाम जल देव वरुण और मित्र सूर्य देव (आसीत्) यह सब थे (अग्निहोंता) नाम का देव इन श्रीजी को (हस्तगृह्य) हाथ में पकड़ कर (आनिनाय) ले आये और बोले कि जैसे वृह-स्पति का स्त्री तारा शुद्ध है वैसे ही यह श्रीजी परम शुद्ध हैं यह आप श्रीराम से स्वीकार्य है ॥ १३३ ॥

हस्ते नेव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्म जायेय मिति चेद वोचन् ॥ नदूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ १३४ ॥

(अस्याः) इन श्री जी का (हस्ते नेव) हस्त से ही (ग्राह्य) ग्रहण से वह ही (आधि) अधिक दुःख से उत्पन्न है तारा के समान यह नहीं है क्योंकि तारा तो चन्द्र देव से संग किया था जिससे सब देव (ब्रह्म जाया) ब्रह्म चर्यवती अर्थात् परम सती है क्योंकि अद्वितीय वीर पत्नी है अतः (इति) यह (अवोचन्) पूर्वोक्त देव गण बोले क्योंकि यह श्री जी न इच्छा करती हुई इन श्री जी को घर्षयन्त जबर्जस्ती पकड़ोगे तब तुमारा नलकूबर के शाप से नाश हो जावेगा ऐसे देव गण बोले (इस हेतु से) (दताय) भगवत्पार्षद रूप रावण के लिये (...ये) विशेष रूप से जिहीत यह प्रही उसके लिये जो होवे

वह (प्रह्मी) नाम विशेष वेग से चलता है (एषा) यह श्री जी (न तस्थे) खड़ी नहीं हुई अर्थात् उस रावण के अनुकूल न हुई जैसे उस प्रकार से श्री जी ने (क्षत्रियस्य) श्री राम जी का (राष्ट्रं) राज संबन्धि जो कुल धर्म आदिक (गुपितं) रक्षा किये अर्थात् पूर्वजों जो साधुओं का आचरण किये ॥ १३४॥

देवा एतस्याम वदंत पूर्वे सप्त ऋषय स्तपसे ये निषेदुः॥ भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधातिपर मेव्योमन् ॥ १३५ ॥

(एतस्याम्) इस निमित्त भूत में अथ तु श्री जी की सतीत्व व्यवहार मे (देवाः) समस्त देव गण और (पूर्वे) पहले होने वाले (सप्त ऋषयः) भृगु मरिची अंगीरा पुलह क्रतु अत्री आदि ऋषि गण (ये) यह सब (तपसे) ब्रह्म विचा-के लिये (निषेदुः) विराजे थे यह सब (अवदन्त) एक ही बार बोले कि हे रावण (भीमा) मृत्यु को देने वाली (ब्राह्म-णस्य) ब्रह्मणः एव ब्राह्मण अर्थात् श्रीराम जी का यह (जाया) धर्म पत्नी को (उपनीता) बल से ग्रहण करोगे तो (दुर्धां) दुर्गति जो नरकादि को (परमे व्योमन्) परलोक में (दधाति) न होगा धारण अर्थात् तुमारो किये हुवे जो तपादि कर्म सब नाश को धारण करेगा ॥ १३५ ॥

ब्रह्मचारी चरति वेविष द्विषःस देवानां भव-त्येकमंगम् ॥ तेन जाया मन्वविंदद् वृहस्पतिः सोमेन नीतां जुव्हं१ न देवाः ॥ १३६ ॥

(ब्रह्मचारी) नाम प्राण जीव स्वभाविकसंगृहीत है (विषो) प्रजाओं में सम्मिलित हो कर (वेविषत्) नखशिख से पूर्ण अनुभव करता हुआ (स) वह प्राण (चरति) गमनागमन पच नादि कार्य करता है (देवानां) इन्द्रियाधिष्ठातृ देव गणों का (एकं) मुख्य (अंगं) नाम चक्षु ज्ञानेन्द्रिय (तेन) तिस प्रमाण से अर्थात् चक्षु द्वारा से धर्माधर्म वस्तुओं का ज्ञान से जानता हैं (बृहस्पति) श्रीराम जी की (जायाम्) धर्म पत्नी को (अन्वविदत्) चक्षु गत जीव देख करके जानता हैं (सोमेन) तेजस्वी रावण ने (नीतां) श्री जी को हरण अर्थात् हाथ से स्पर्श करने पर भी जैसे (देवाः) देव गण (जुह्वं) श्रुवा में रखा हवि के समान यह परम शुद्ध है इन को ग्रहण करो ॥ १३६ ॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ॥ राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्म जायां पुनर्ददुः ॥ १३७ ॥

(देवाः) अग्नि आदि अष्ट वसु (मनुष्याः) श्री महाराज दशरथादि (राजानः) इन्द्र यम वरुण सोम आदि (पुनर्वै) निश्चय पूर्वक फिर (आददुः) दिये (पुनः) फिर यह कहें (सत्यं) सत्य को शपथ (कृण्वाना) करते हुए और (ब्रह्मजायां) श्रीराम जी का धर्म पत्नी श्री जी को (पुनः) फिर (ददुः) श्रीराम जी के लिये दिये ॥ १३७ ॥

पुनर्दाय ब्रह्म जायां कृत्वी देवैर्नि किल्बिषम् ॥ ऊर्जं पृथिव्या भक्तायो रुगायमुपासते १३८

विवाह के अपेक्षा से अर्थात् श्री जी श्रीराम जी को बिवा-

ह में दी गयी थी इस समय में अर्थात् लंका विजय प्राप्त में (ब्रह्म जायां) ब्रह्म श्रीराम जी उनका जाया नाम धर्म पत्नी श्री जी को (पुनर्दाय) फिर से देकर के (देवैः) देव गणों ने (निर्किल्विषम्) दोष रहित जैसा हो वैसा (कृत्वी॰) दे करके (उरुगायम्) महा कीर्ति रूप श्रीराम जी को देवगण और ऋषि गण (उपासते) श्रीराम यश को रचना करते हैं। वह कैसे हुए (पृथिव्याः) भूका (ऊर्जम्) अन्नादिको (भक्ताय) विभीषण सुग्रीव श्रीलक्ष्मण जी आदि के लिये राज्य को अलग अलग करके और देव गणों की सेवा के लिये ब्राह्मणों के भोजन के लिये और नित्य प्रतियज्ञ होने के लिये विभाग करके स्थित हुए ॥ १३८ ॥

सृजः सिंधूँ रहिना जग्रसानां आदि देताः प्रविविध्रे जवेन ॥ मुमुक्षमाणा उतया मुमुच्रे ऽथै-तान रमंते नितिक्ताः ॥ १३९॥

तहां प्रथम प्रकरणों से ही कर्मों से उपासकजन स्तुति करते हैं (सिंधून्) समुद्रों को अर्थात् सात सागर अथवा चारों तरफ चार समुद्र (अहिना) रावण रूप काल सर्प से (जग्रसानान्) ग्रस्त अर्थात् पकड़े गये को (सृज) अभय दान से पुनः आप श्रीराम छोडाते हो वैसे (आदित्) इस रावण से (एताः) सिंधु भार्या नदी आदिक (प्रविविज्रे) विशेष रूप से भय भीत होकर चलती हैं सब जब यह सब छूटी तब वेग से चलने लगी वैसे ही (मुमुक्षमाणा) रावण के कारागार से अपने का छूटने को इच्छा करते हुए (मुमुच्रे) इन सबों को छोड़ा दिये (अथ) दूसरे से यह सब देवता (नरमन्ते) आन-

न्दित नहीं होते हैं अर्थात् श्रीराम छोड़कर दूसरा आनन्द दाता कौन था यही जिससे (निर्तिक्ता:) निरन्तरकटुक शोक उपहत रस अर्थात् रस रूप आनन्द को उपहत नाम नाश होगया है अब आप की महिमा से सब तरह से प्राप्त हुआ ॥ १ ३६ ॥

सध्रीचीः सिन्धुमुशती रिवायन्त्सनज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ॥ अस्तमाने पार्थिवाब सून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥ १४० ॥

श्री जी श्री राम जी को प्राप्त होने पर यह दूसरे बहाने से कहा जाता हैं (सध्रीची) सह धर्म चारिणी श्री जी आदर अर्थ में बहु बचन है (सिन्धुम्) समुद्र समान अपार श्रीराम जी को (उशतिखि) कामय मान नदी की समान (आयन्) आया (आसां) श्री जी की प्राप्य रूप से इच्छा करने वाला (जार:) रावण (सनत्) सर्वदा (पूर्भित्) शरीर शोषण करने वाले जो वह (आरितः) उसको मारें। अध्यात्म पक्ष में काम का नष्ट होने पर श्रद्धा आदिक के द्वारा ब्रह्म प्राप्त भये अत्रि आदि ऋषि द्वारा हे (इन्द्र) हे श्रीराम जी आप का (अस्तम्) गृह रूप अयोध्या को अथवा हार्दा काश को (पार्थि-वान) पृथिवी संबन्धि (वसूनि) समस्त काम (आजग्मु:) आ जाते हैं (अस्मे) हम सबों का आप श्री का दर्शनाभि लाषी (पूर्वी:) पहले (सूनृताः) सुन्दर वेद संबंधि वाच"एषसर्वेश्वरः" इत्यादि अथवा मैं ब्रह्म हूं इत्यादि आ जाते हैं। ब्रह्म भाव से आप श्रीराम को बाहर देखता हूँ और बाहर विद्यमान श्रीराम

जी को अपने आत्मा रूप आप को हर्दाकाश में देख रहा हूँ ॥ १४० ॥

सचंतयदुषसः सूर्येण चित्रा मस्य केतवो राम विंदन् ॥ आयन्नक्षत्रंददृशे दिवोन पुनर्यातोन किरद्धा नवेद ॥१४१॥

वेद रूपी कल्प वृक्ष के आश्रय से जो जो इच्छा की जावे वह सब पूर्ण ही होती है अर्थात् वेद भगवान से सब अर्थों की सिद्धि होती हैं। अतः श्रीराम मंत्र के विषय में पहली नील कण्ठाचार्य जी ने ही ऋचा को दिखाया है। और श्री वैष्णवा चार्यों ने भी इसी ऋचा में श्रीराम मंत्र का उपा दान किया है और उसका व्याख्यान भी किया हैं। इसी प्रकार मैं भी ऋचा में श्रीराम मंत्र गर्भित हैं इसे स्पष्ट तथा प्रदर्शित कराता हूँ। जिस ऋचों में श्रीराम मंत्र है वह ऋक् संहिता में है उपासना में मंत्र और मंत्र के अर्थ का अनुसंधान करना प्रधान माना जाता है इस को प्रस्फुट करते हैं (सचन्त इति) (केतवः) ज्ञान वाले विद्वानों ने (अस्य) रस श्रीराम की (रां) सम्पति को ऋक् वेद साम वेद यजुर्वेद रूप एवं वही सज्जनों की लक्ष्मी है अमृत है "साहि श्रीरमृता सताम्,, इत्यादि वेद बचनों से कहा है वेदत्रयी को सार भूत प्रणव रूप है इसको शब्द से और अर्थ से भी (अविदन्) जान लिया है। जो कोई यह कहें कि इस शब्द मयी सम्पति में उकार नहीं है। उसके प्रति यह उत्तर है कि (उष सः) उषा प्रातः कालके समान अल्प प्रकाशक जो विराट् है वह अकाररूप (सूर्येण) सूर्यके साथ

अर्थात् पूर्ण प्रकाश उकार रूप हिरण्य गर्भ के साथ (सचन्तः) ऐक्यको प्राप्त होकर स्थित हैं अर्थात् कार्यत्व सामान्यसे अकार में ही उकारका समावेश है। ऐसा होनेपरभी अम् यहां निष्पन्न हुआ (राम) नहीं इसपर कहते हैं कि (चित्राम्) चित्र अग्निका वाचक है अग्नि का कारण वीज रेफ हैं वह रेफ सस्वर स्वर विशिष्ट होनेपर और अम्के साथ सवर्ण दीर्घ करदेने पर (राम्) यह पद होता है। चित्र शब्द में मत्वर्थीय अच् प्रत्यय होकर पश्चात् टाप् प्रत्यय हुआ है। अर्थ यह है कि रेफार्थ अग्नि रूप चिदाभासके साथ समष्टि स्थूल और सूक्ष्म कारणोंका इस (राम) पद से प्रदर्शन हुआ। अर्धमात्राजो ओंकारमें मानी जाती है वह इस (राम्) पद में भी विद्यमान है। (सा) पुनर्ददृशे। अर्थात् रेफ अकार उकार विशिष्ट अर्ध मात्रात्मक मकार सिद्ध हुए। इसमें दृष्टान्त है (दिवोनेति) न उपमार्थ हैं जैसे स्वप्न में जागृत अवस्थाके देखे पदार्थ ही फिरसे देखे जाते हैं इसी प्रकार समष्टि त्रय के वाचक (रां) पद से क्रम से व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारण वाचि (रां) इस पद को फिर से पढ़ना चाहिये (अस्य) इसका विशेषण (आयन् नक्षत्रम्) यह है। तात्पर्य यह है कि आकार विशिष्ट जो य यह य शब्दसे आचार आचरण अर्थ में क्विप् प्रत्यय कर और तुक् प्रत्ययका आगमन करनेपर निष्पन्न होता है। इसके आगे द्वितीय बार पठित (राम्) जोड़ देनेपर चतुर्थ्यन्त रामायपद निकल आया। तदन्तर (नक्षत्र) पद से नक्षत्रों में मुख्य चन्द्र किया गया "हृदयान्मनो मनस-श्चंद्रमाः १ इस श्रुति प्रमाण से"। इनका कारण मन और मनका कारण हृदय है। अतः नक्षत्र पद से हृदय पदार्थ लिया गया है। जैसे अन्यत्र वेद में। "ता अन्नम सृजन्त" इस

स्थल में अन्नपद पृथिवी का वोधक है इसी प्रकार यहां भी जान लेना चाहिये । फलित यह हुआ कि हृदय पदार्थ आगम शास्त्रमें नमः माना गया है । इन सब वर्णों का सम्मेलन करने से । रां रामाय नमः । यह मंत्र निष्पन्न होता है । इसका फल इस वाक्य से कहा जाता है। **'यतो न किरश्चानु वेद'** अर्थात् यत्न-शील पुरुषकी स्थिर बुद्धि निश्चयरूपसे इसको जान सकती है। तात्पर्य यह है कि इसपूर्व प्रतिपादित मंत्रका जप करते हुए इस के अर्थ का अनुसन्धान करनेसे पदार्थ स्वरूपका मनसे साक्षा-त्कार होता है । क्योंकि **"मनसै वेद माप्तव्यम्"** मनसे ही इस परम तत्व की प्राप्ति होनी है यह श्रुति से । इस ऋचा में स्पष्ट ही श्रीराम मंत्रका स्वरूप वर्णित है । श्रीनीलकण्ठाचार्यजी ने जिस प्रकार इस ऋचा का व्याख्यान किया है इसी प्रकार मैं ने यहां प्रदर्शित किया है। मंत्रार्थस्तु समस्त मंत्र का अर्थ यह हुआ रां रां चासौ आश्चेति रां रामः तस्मै रामाय नमः अर्थात् श्रीरामजी के लिये प्रह्वोनाम नम्रतापूर्वक मैं नमस्कार करता हूं तहां पर अकार में समस्त वाणी अर्थात् चतुर्वेद अष्टादश पुराण और छः शास्त्र ये सब विद्यमान हैं यह श्रुतिसे जाना जाता है कि

'तत्राकारे वै सर्वावाग्, यथैवबटजीजस्थ प्राकृतश्च महाद्रुमाः तथैव रामबीजस्थ जगदेतच्चराचरम्"

और अर्धमात्रा जो अच् रहित जो मकार उसमें रहे भया जो व्यष्टि समष्टि तीन पूर्वोक्त जानना चाहिये और चतुर्थफलप्रद समस्त मंत्र जपसे होता है ॥ १४१ ॥

पद तव श्रिये मरुतो मर्जयंत रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ॥ पदं यद्विष्णो रुप मंनिधायि तेन पासि गुह्यं नाम गो-नाम् ॥ १४२ ॥

यह मुख्य उपासक रुद्रकी स्तुति है हे (रुद्र) श्रीहनुमन् (तव) (श्रिये) आपके अधिगत नाम प्राप्त जो संपत् अर्थात् श्रीराम विद्याकी प्राप्तिके लिये (मरुत) देवगण (मार्जयन्त) खोजते हैं अर्थात् तप ध्यानादि द्वारा अपनेको (यत्) जिससे (ते) आपका (जनिम) जन्म (चारु) रम्य अर्थात् प्रशंसनीय हैं। जिस हेतु से आपने (चित्रम् पदं) रेफ रूप अग्नि से युक्त। चित्रा मस्य केतवो राम विदन्' यह उदाहरण मंत्रमें प्रसिद्ध (रां) यह रूपको (विष्णो रूप मम्) श्रीविष्णु वाचक पदका (पासि) समीप में दृश्य मान जैसे हो वैसे (निधायि) स्थापित किया जैसे गंगणपतये नमः दुं दुर्गायैनमः यह मंत्र शास्त्र मर्यादा से (रां) इसके समीप में वह (रां) पहलेही मंत्रके आदि में होता है पश्चात् मंत्र होता है यह श्री विष्णु वाचिपदको स्थापित करके तच्च और वह श्रीराघवादि पदोंसे शीघ्र उपस्थित श्रीरामपदही वर्ण समानसे अधिक उप-स्थित होता है कहनेका भाव यह है कि जैसे राघव इस पदमें रा आदि पद है वैसेही रामपदमें भी रा पद से यह दोनों समान पद हैं तो भी राघवादि पदोंसे अधिक राममें रा पद है। उस श्रीरामपदके साथ नाम नमन्ति_नम न हो जिससे वह नाम न

ति वाच्चिपद होनेसे नमस्कारका बोधक हैं। उपासना विशिष्ट होनेसे (गोनाम्र गुह्यम्) गो नाम इन्द्रियों का गुहन स्थान जो हृदय यह अर्थ हैं। उससे हृदय शाब्दित नमः पद उधृत होताहै उसके योगसे और श्रीरामपदसेभी चतुर्थी होती है। उससे (रां रामायनमः) यह तीन अक्षरका उधार हुआ। जिससे हे श्रीहनुमन् आपने चित्रं पदं अर्थात् अग्नि रूप रेफ पदको श्री विष्णु देवके समान स्थापित हैं जिस कारणसे उसके साथ गो नां गुह्य नामपासि। गो इन्द्रियोंका गूहन स्थान जो हृदय के पास इसी लिये आपका जन्म सुन्दर है अर्थात् जगत्प्रसिद्ध है ॥ १४२ ॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषि रस्मि विप्र।। अहं कुत्सामाजुंनेयं पृञ्जेहं कवि रुशना पश्यतामा ।। १४३ ॥

एवं इस तरहसे श्रीराम उपासकक श्रीराम तादात्म्याभिमानसे अर्थात् अभेद अभिमानसे अर्थात् मैं श्रीराम हूँ यह कथन करनेवाले वाम देव ऋषि थे दूसरा नाम रुद्र था श्रीराम का विशेषण कोही अपने आत्माको स्तुति करते है वृहदारण्यक श्रुतिके प्रमाणसे 'तद्धेदं पश्यं ऋषि र्वामदेवः प्रति पेदे' (अहम्) मैं (मनुरभवम्) मनु हुए (अहम्) मैं (च) और (सूर्यः) सूर्य हुए। जिस वंशमें मैं उत्पन्न होकर उन दोनोंको अर्थात मनु और सूर्य मैंही हुए जो मनुजी मेरे निमित्त श्रीदशरथ रूप ने प्रसन्न किये (कक्षीवान्) नाम ऋषि विप्र सूक्ष्म दर्शी होने वाले जो कार्यको जाननेवाला वहभी मैं ही हूं (अहम्)

मैं (आर्जुनेयम्) नाम अर्जुनका पुत्र (कुत्सां) कुत्स नामका (पुञ्जे) अर्जुनका पुत्र पूर्व बालक अवस्था में ही मरते हुएको निरन्तर (अहम्) मैं भर्जितवान् बचा आ हूँ अर्थात् दीर्घ आयु देकरके बहुतर तनय (सूर्य) का परिस्पन्द नाम कीरणोंके संसर्गसे शिथिल तरत्वे नाम स्थित किया हूँ। (कवेः) पिता भृगु ऋषि वहांपर कवि शब्दसे भृगु ऋषिका वाचक है जैसे 'अन्नं विराट्' अन्न विराट् है अर्थात् अन्न विराट् कार्य है अन्न कार्य कैसे हो सकता है अन्न तो कारण ही होता है कार्य नहीं अतः यहां पर लाक्षणिक प्रयोग है वैसे ही जानना चाहिये अर्थात् कारण में कार्य उपचारिक है। आप के भार्या को दूसरा हरण करेगा वह मेरे लिये शाप दिये वह मैं ही भृगु हूँ। तथानु वैसे निश्चय उशनाकवेः भृगु का पुत्र शुक्र है वह मेरे शत्रु जो राक्षस गणों का तेजो वृद्धि करें हैं वह मैं ही हूँ (अतः) (मा) मुझ को सर्वात्म भाव से श्रीराम भद्र जी को (पश्यत) हे साधक जन देखो यह विशेष परा भक्त का लक्षण है ॥ १४३ ॥

दूरं किल प्रथमा जग्मु रासामिन्द्रस्ययाः प्रसवेसस्नुरापः ॥ क्वस्वि दग्रंक्वबुध्न आसामापो मध्यं क्ववोनूनमंतः ॥ १४४ ॥

इस प्रकार जीवन्मुक्त का सार्वात्म्य अर्थात श्रीरामस्वरूप अपने को कहकर जीवन्मुक्त का अर्थ प्राकृत शरीर युक्त हो करके मुक्त सुख भोगना विदेह मुक्त नाम प्राकृत शरीर त्याग कर पश्चात् मुक्त होने का नाम विदेह मुक्त का कैवल्य को कहा जाता है (प्रथमाः) पहले मान सिक पुत्र सनक आदि चार

हुए (आसाम्) इन सबों का (आपः) जल के संबन्ध से (दूरं) अति दूर को (जग्मुः) प्राप्त हुए (आपः) जल (इन्द्रस्य) श्रीराम जी का (प्रसवे) उत्पत्ति के लिये सृष्टि कर्म में (प्रस्रुः) ब्रह्माण्ड रूप से (प्रसृता) फैला आ गया वह अपने कारण पिण्ड ब्रह्माण्ड में परित्याग कर शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त हुआ अन्येतु और दूसरे आचार्य यह कहते हैं कि (आसाम् आपः) इस सृष्टि से पहले जल हुआ था अवसान प्रत्यासन्न नाम अन्तिम शेष भाग (कस्वित्) किस में वैसे (बुध्नो) मूल को (क्व) कौन कहां (मध्यं) मध्यको (क्व) कौन कहां हैं (आपः) जल (वः) आप सबों को (अन्तः) अन्त और (नूनं) निश्चित (क्व) कहां स्वित् अस्ति स्थित है उस को मै जानता हूं यह भ्रम युक्त अर्थ है ॥ १४४ ॥

प्रवः पांतं रघुमन्यवोंधो यज्ञंरुद्राय मील्हुषे भरध्वम् ॥ दिवोअस्तोष्य सुरस्यवीरै रिषुध्येवम-रुतोरोदस्योः ॥१४५ ॥

एवं फल के सहित उपासना को समाप्ति कर और उपासना के कामनाओं से उपासना संप्रदाय के प्रवर्त्तक जो रुद्र को भी आराधनीय है उसे कहा जाता है हे (रघुमन्यव)हे श्रीराम व्रतधारी हे श्रीराम उपासक काम वाले यह जितना (मील्हुषे) विद्या रूप अमृत के देने वाले (रुद्राय) रुद्रदेव के लिये (यज्ञं भरध्वम्) यज्ञ को पूर्ण करो अर्थात् धारण पोषण करो वह यज्ञ कैसा है (वः) आप सबों का (अन्धः) अन्नको अर्थात् अन्न का विकार देह को और मन को (पातम्) रक्षक हुए "अन्नमयंहि सोम्यमनः," यह देह की समान मनको

भी यहां पर विकारत्व सुना गया है। वह कैसा अन्ध नाम अन्न है जो (दिवः) स्वर्ग के अपेक्षा से भी (अस्तोषि) स्तुति की गयी है वेद में "ताम्रव्र बन्सुकृतंवत," वह सुकृत कहा गया है यह मानुष देह का देव गण भी पुण्य रूप से स्तुति करने से (असुरस्य) असुरका सुराके विना भी अमर ब्रह्मका (वीरैः) पुत्र सनकादियों से स्तुति होती है यह संबन्ध है (मरुतः) वायु को समान शीघ्र चलने वाले जो प्राण है (रोदस्योः) पृथवी में और आकाश में निवास करने वाले मनुष्यों का और देवों का (इषुधौ) निषंगे इव नाम तुणी की समान देह में अच्छा निकला हुआ होते हैं इषुध्या कैसे सुप् का आच् प्रत्यय होने से और यण् होने से हुआ है चञ्चल जीवित का जल दी तारक श्रीराम मंत्र प्राप्तिकारक श्री रुद्र देव को पूजन करे, यह भाव है ॥ १४५ ॥

हिरण्य कर्णम्मणि ग्रीवमर्णस्ते नो विश्वे-
वरिवस्यन्तु देवाः ॥ अर्योगिरः सद्यआजग्मुषीरु
स्राश्चा कन्तू भयेष्वस्मे ॥ ४६ ॥

न पूजन करने पर भी रुद्र देव देश विशेष में अर्थात् काशी में और काल विशेष अर्थात् मरण काल में कारुणिक होने से तारक जो श्रीराम मंत्र को जनमात्र अर्थात् कृमिकिट आदि जीवों का उपदेश करते हैं यह यहां पर ही जन्तु प्राणी मरण समय में रुद्र तारक ब्रह्म मंत्र को देने पर जिससे यह जीव अमृत हो करके मोक्ष कोपाता है अविमुक्त प्रकरण करके जावा- ल मंत्र अर्थ को आम्नातं कहा है ऋषि कहते हैं कि (हिरण्य)

हरणात् हिरण्यं नाम संसार बन्धनों को जो नाश करें वह हिरण्य कहाते हैं अर्थात् तारक महा वाक्य जो श्रीराम मंत्र उसको (कर्णम्) कान में जो देवे जिससे वह हिरण्यकर्ण कहाता है (मणिः) आत्मतत्व रहा भद्य जो ग्रीव में स्थित होने से उत्क्रमण प्राण से प्राप्त होता है यहां वह मणि ग्रीवम् वह कहता है (अर्णे) जल को (नः) हम सबों का (विश्वे) (देवाः) अर्थात् समस्त इन्द्रिय गण का (वारिवस्यन्तु) सेवा करो। अत्रा हो रात्र पदयोंः। इन दोनों पदों में अहो में अकेलोप हुआ रात्र में त्रके लोप हुआ तब होरा पद हुआ इसका अर्थ दिन रात्रि इस के समान हिरण्य कर्ण मणि ग्रीव पदयोंः इन दोनों पदों में हिरण्य का लोप हुआ और ग्रीव का लोप हुआ तब मणि कर्ण पद का सिद्धि हुआ लोक व्यवहार से स्त्री वाची शब्द का प्रयोग किया जाता है अर्थात् मणि |मणि का पद से कहा जाती है यहां पर अर्ण शब्द जल का ग्रहण किया जाता है। पद द्वय का एक स्वर पाठ से अंग अंगि भाव जाना गया है। तत्त्वज्ञान वाक्य का कारण से और उसके अर्थ का भी वैसे अब गमात् जानने से। अतोऽत्रार्णः यहां पर किसी का यह मत है कि अर्ण शब्द से उस का अभिमानि देवता का लक्ष्य करके और उसमें विग्रह को कल्पना करके तहां पर अलंकार अर्थात् अवयव शरीर के सिद्धि की लिये बदद्वय हैं यह कथन क्लिष्ट कल्पना है अतः उस में स्थिति नहीं हो सकती है और दूसरा दोष यह है कि गौरव होता है और एक स्वरमें पाठ का विरोध भी होता है। अत्रहि वैदिक जन प्रथम पद को उदात्त पढ़ते हैं द्वितीय पद को अनुदात्त पढ़ते हैं यह प्रसिद्ध बचन है। उस सबों का उदात्तत्व होने पर पूर्व अवयव के बिना दूसरा निमित्त नहीं हो सकता है। इस का भेद सौ स्वर शास्त्र ज्ञानी

ही जाने। अर्णासः [नाम] [सेवा का फल] कहा जाता है (अर्यः) ईश्वर जो महा रूद्र उदा हरण होने पर सूक्तादि मंत्र में देखा गया है (गिरः) नाम गिरि धारक रूप जो (उस्राः) मंत्रसिद्ध रूप काम धेनु की समान (सद्यः) तप जपादि के बिना ही अकस्मात् (६आजग्मुषी) [आगमन शील वाली वे सब (अस्मे) हम सबों को (चाकन्तु) तृप्ति करें (उभयेषु) सविकल्पक और निर्विकल्पक भावोंमें सिद्धियों से अपने स्वरूप आनन्दसे और प्रीणयन्तु सुखी करें। अत्र समाधिव्यक्ति की अपेक्षा सेवाव्युत्थानका अपेक्षा से वहुत्व कहा गया है चाकं तुवा प्रीण यन्तु में। आ यह पदका दोवार आवृत्ति करना चाहिये। सद्य आ जग्मुषी) इस पद द्वय का आवृत्ति हैं। अनाराधित होनेपरभी रुद्रदेवजी मणि कर्णिका में अन्तकाल आनेपर तारक ब्रह्म श्रीराम मंत्रका उपदेश देते है किन्तु आराधना करनेपर क्या दुलंभ है तरने की इच्छा करने वाले दोनों ठहीन न त्यागना चाहिये अर्थात् काशी और आरा-धना दोनों करना चाहिये। यत्तु से किसीका यह मत है कि अरणीय पदको अपत्य अर्थ मैं वर्णन हैं ऐसा कथन करते हैं। वह अर्णा शब्दको जल वाचक होनेसे अपत्य नाममें पाठ नहीं हैं पहले तो श्रुतकी हानी दूसरा अश्रुतकी कल्पना प्रसंग से त्याज्य ही हैं॥ १४६॥

न सस्वोद क्षोवरुण धृतिः सासु शमन्युर्विं भीदको अचित्तिः॥ अस्ति ज्यो यान्कनीय स उपारे स्वप्नश्च नेदनृ तस्य प्रयोता॥ १४७॥

अतः परं इससे पर अब शरीर धर्मसेही स्तुति होती है

हे (वरुण) हे भजनीय वा स्वी करणीय (दक्षः) * यं कुशल सामर्थ्यसे समुद्र का उलंघनादि श्रीहनुमानादियों का अपने साम र्थ्यसे नहीं उल्लंघन किये हैं किन्तु श्रीरामजीकेही (ध्रुति) वह धृति नाम सामर्थ्य सेही यह कार्य हुआ है अर्थात् आपके अधिष्ठा तृत्वसे । जिस हेतुसे (ज्यायान्) आप सर्व सामर्थ्य वान् ईश्वर हैं अतेव बड़े हैं (कनीयसः) हम सब जीवों को छोटा होनेसे असमर्थ्य ही हैं (उपारे) समीपमें हैं अर्थात् आपका सामर्थ्यसे समुद्र तरणादिक यह समस्त कार्य किये हैं। शंका दूसरेके सामर्थ्य से दूसरा कैसे करता है यहां पर यह दृष्टान्त हैं (सुरा) मद्य (मन्युः) क्रोध (विभीदकः) भयदा- यीक अर्थात् मद्य पीनेसे कलह होता क्रोध होना और भयंकर रूप होता है ये गुण मद्यमें विद्य मान होता है जैसे (अचित्तिः) भूत पित आदि आवेश से जायमान जो उन्माद इन सबोंसे आविष्ट पुरुष अशक्त होनेपर भी अपने सामर्थ्य से बाहर कर्मों को कर लेता हैं वैसेही यह अर्थका भी जानो । श्रीरामजीकी धर्मपत्नी श्रीजीके विशेषण विशिष्ट होनेसे अदुर्घट कार्यको श्रीहनुमानादि कार्य किये (स्वप्नश्चनेति) स्वप्न की समान (अनृत स्येन) भय सुखादि के उस हेतुसे (प्रयोता) संयोज यिता और वियोजयिता यह दोनों कार्य आप श्रीमें हैं । यह इस का रूपको । जो स्वप्नके समान समस्त प्रपञ्च को बनाते हो और संहार करतेहो उस श्रीरामजीकी हम सबोंसे बुद्धि कितना होगी अर्थात् कुछभी नही होगी ॥ १४७ ॥

त्वंह त्यदिंद्र कुत्समावः शुश्रूषमाण स्तन्वा समर्ये । दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरंधय

आजु नेयाय शिक्षन् ॥ १४८ ॥

लोकमें स्थित होकरभी अलौकिक कर्मों को करते हो हे (इन्द्र त्वंह) हम प्रसिद्ध (यत) दूसरेके देखनेमें अप्रत्यक्ष हो (कुत्सम्) ऋषिको (आवः) रक्षाके लियेहो किससमयमें (समर्ये) कालके साथ स्पर्द्धा होनेपर अर्थात् लागडाट होनेपर (तन्वा) मरा हुआ पुत्र शरीरके साथ आया हुआ पिताके वाक्य को शुश्रूष माणः) सुनकर मनमें करते हुए मरा हुए पुत्र को ले आये आपके द्वारिपर रखकर शोचते हुए विप्रका वाक्य को सुनकर यमराज को भी जित करके विप्रके पुत्र को ले आये हो। कैसे मरा हुए काभी रक्षित किये उसे कहा जाता हैं (दासं शूद्रम्) शूद्रके अयोग्य जो तपसे शूकते हुए शरीरको (कुयवं) कुत्सित होनेसे अपने दोष हेतुसे और मुनि धर्मसे युक्त होकर अपना धर्मजो सेवा उसको त्यागकर निन्दनीयकर्म युक्त होकरके (अस्मै आजु नेयाय) अर्जुनो ब्राह्मणीके पुत्रके लिये उसको जीवनके लिये (न्यरंधयः) निरंतर उसको मारते हो कि सप्रयोजनके लिये (शिक्षन) धर्म मर्यादाके पालन करनेके लिये शिक्षा दिये हो ॥ १४८ ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ॥ विद्रमः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमी वचात नः ॥ १४६ ॥

इस प्रकार श्रीरामजीकी स्तुति करके श्रीहनुमानजी के सहित श्रीजांववंतजीको स्तुति करते है। जहां श्रीहनुमानजी में और जांववान में द्रोणाचल को ले आनेपर सर्वौषधी स्वरूप

गुणको जाननेके निमित्त होनेपर (ओषधीः) समस्त ओषधी जो शल्य विशल्पनामकी औषधी ले आये और पिडा युक्त जो दोनों श्रीप्रभुओं का पिडारहित किये हो आप दोनोंने (समग्रतः) संगत हुआ तहांपर यह दृष्टान्त है जैसे (राजानः) राजा लोग (समितौ) सभामें आ मिलते है वैसेही जानना चाहिये कि (सविप्रः) व्यापक सर्वौषियों का ले आनेवाला अथवा प्रयोग करनेवाला (भिषक्) आप दोनों वैद्य होते हों अर्थात् रोग नाशक होते हो वहही (रक्षोहा) राक्षसोंका नाशकारी श्रीरामा दियोंका जीवन प्रदानसे (अमीव चातनः) इन दुष्टोंको मारने के लिये चातयते प्रार्थयते अर्थात् प्रार्थना करता हूं वह तैसे दुष्ट वध काम है है ॥ १४६ ॥

स्व क्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वर नृतस्य योना समरंतनाभयः त्रीन्स मूर्ध्नो असरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतम पीपरन् ॥१५०॥

अब श्रीआदियों की स्तुति करते है । सक्वे इत्यादि नव सूक्त ऋचासे इस मंत्रके आंगिरस पवित्र ऋषि है पवमान सोम देवता है सोम यह पद श्रीविष्णुजीके नाम है। हवि रातिथ्यं निरूप्यते सोमे राजन्या गते इसे प्रारम्भ करके "वैष्णवो भवति विष्णुर्वै यज्ञस्त स्मा एतद्धविरातिथ्यं निरु प्यते" यह समाप्ति करते हुए जैसे पघोलनेवाला जो दधि आदिक वस्तु वह अति खट्टासे बुद् बुदाकार होनेसे उपर आये हुए भागके समान गायन किये हुए सामका (द्रप्सस्य) रावण धम लोकोंको दुःख देता हुआ अधमत यहां पर कर्म में

बष्टी है उसके प्रति (स्त्रभ्त्रः) नाम ढकेलः हुश्रा श्रथवा चलाया हुश्रा उसके कर्तव्य होने पर (समस्वान्) सम्यक् जय शब्द उच्चारण करते हुए योद्धा गणः। श्रौर उससे (ऋतस्य योना) योनौ ऋतस्य योनि यह पद जल के नाम मे प्रवेश है सायन भाष्य में तौ यज्ञका उत्पत्ति स्थान में यह व्याख्यात है (नाभयः) जल के गर्भ में प्राप्त है'**श्रद्भ्यः पृथिवी**'यह श्रुति से श्रथवा जल से उत्पन्न है भूमि कवि पुरुष ने देखा है (समन्त) सम्यक् मज्जनं नाम डूबने के बिना चले गये। जिसका स्त्रकर्व नाभयः जल में तरते भये सःवह (असुरः) रावण नाम धारी (त्रीन्) में बहु बचन कैसे जैसे **कपिंजलानालभेत** इस वाक्य में जैसे कपिंजलान् यह बहु बचन है वैसे जानो कपिं जल नाम पक्षी को श्रालभेत मारो। प्रातिपदिक श्रर्थ के त्रित्वस्य तीन पद्द श्रर्थात् त्रीन् बहुत होने से एक एक में तीन तीन जानना चाहिये इस हेतु से नव संख्या वाले (मूर्ध्नो) मस्तकों को (चक्रा) काटते भये कब काटते भये (श्रारभे) श्रारभ्यत् इति श्रारभ इस विग्रहसे जाना गया है कि यज्ञ में श्रर्थात् रावण ने श्रपने नव शिरों की श्रग्नि में श्राहुति दिया था यह कथन इतीहास से जाना गया है श्रतः उसमे वधके लिये महाप्रयत्न किये गये हैं। जल में पषाण संग का क्या फल हुश्रा उसे कहा जाता है (सत्यस्य) धर्म का सम्बन्धि जो (नावः) नाव के समान तरने वाला जो शिलापत्थल (सुकृतं) शोभन कर्म वाले श्रीराम जी को,सहायक (श्रपीपरन्) श्रपार समुद्र का पार को प्राप्ति के लिये। जैसे सत्य केवल से तपायी हुई परशु नाम लोह गोला हाथ पर धरने से शीतल हो जाते हैं इसी प्रकार श्री जी का पातिव्रत्य धर्म महात्म्य से श्री जी की बंधन छेदने के लिये शिला भी समुद्र में तरने लगा। धर्म नाव शिला। धर्म रूपी

शिला नाव हो गया (यह कहा है ।

'साशिलाविप्रैः पातितातज्जलेशुभे चक्रुः शिव-
कथां पुरायां काशी वासि जनैर्वृताः ॥ १ ॥

अर्थ विप्रों ने शुभ जल में शिला को फेंकदिये काशी निवासी जन समुदाय पवित्र शिव कथा को प्रारम्भ किये ॥ २ ॥

उसी क्षण में तृषितगौवत्स के सहित आगयी उसने जल पीकर तृप्त हुई हे पार्वति तुम यह सुनो । वह शिला प्रधान मुनियों के प्रभाव से जल के भीतर से जल के उपर जल दी ही सबों के देखते देखते ॥ २ ॥ जैसे तुम्बी फल शुष्क जल के उपर आते हैं वैसे ही हलका होकर धर्म के प्रभाव से शिला जल के उपर तरने लगी यह धर्म का गौरव है॥ १५० ॥

सम्यक्सम्यंचो महिषा अहेषत सिंधो रूर्मा वधि
वेना अवी वियन् ॥ मधोर्धाराभिर्जनयंतो अर्क-
मित्प्रियामिंद्रस्यतन्वमवी वृधन् ॥ १५१ ॥

अष्ट वसु रूप से समस्त बानरों की स्तुति करते हैं (सम्यंच) सुगतयः सुन्दर रीति से गये (सम्यक्) चारू सुन्दर (अहेषत) बढ़ते हुए (महिषा) महान्वानरगण वे सब ही (सिन्धोः) समुद्र के (ऊर्मौ) तरंग के एक देश में शतयोजन विस्तीर्ण में (वेना) शोभ मान (अधि) उपर में (अवीवियन्) फेंकते हुए (सत्यस्य नाव) इस पद को पचास मंत्र में अनुवृत्ति है अर्थात् सत्य रूप धर्म का शिला नाव है (मधोः) आदित्यस्य नाम सूर्य का । 'असौवा आदित्योय देतन्मधु' यह श्रुति

से जाना गया कि यह आदित्य मधु नाम प्रिय वस्तु है (धारा-भिः) रोहितादि अमृत रूप पञ्च धाराओं से पञ्च धारा यह है अष्ट वसु एकादश रूद्र द्वादश सूर्य समस्त देव गण और उञ्चास मरूत वायु देव (अर्कम्) रवितुल्य आत्मा को ही उत्पन्न किये उपासना बल से प्रगट किये (इत) एव (इन्द्रस्य) श्रीराम जी का (प्रयां) श्री जी को (तन्वं) शरीर रूप श्री जी को (अवीवृधन्) वद्धाई करता हुआ रावण के गृह में (निरूद्धां) रोकि हुई श्री जी को जय शब्दों से प्रसन्न करते हुए ॥ १५१॥

पवित्रवंतः परिवाचमासते पितैषांप्रत्नो अभिरक्षति व्रतम् ॥ महः समुद्रं वरूणास्ति रोदधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ १५२ ॥

अन्ना वीवियन् इस मंत्र में भी वृद्धाइ है यह उसे विस्तार करते है जैसे (पविम्रवन्तः) अध्वर्यवः नाम ऋत्विज वाचंप-र्यासते विध्यर्थां अर्थात् विध्यर्थक नाम कार्य परक वाच लेट लोटतव्यत अनीयर और विधि लिंग वाणी को पूर्ति करते हैं और कृष्णमनुतिष्ठंति नाम कृष्ण स्वर्ग फल दायी कर्मों को अनुष्ठायी प्रयोग करते हैं 'एषा पिताभृतिदानेन पाल यितायजमानः अर्थात् इन ऋत्विजों का यज मान पिता रूप से भृतिदानेन दक्षिणा रूप में पालयिता देते हैं (व्रतम्) व्रत रूप यज्ञ फल को देता है (अभिरक्षति) सर्व वस्तुओं को स्वीकार करके वैठा है इसी प्रकार से जो वानर गण प्रयुक्ता

एकट्ठा हो करके सेतु को बानये वह (महः) बड़ा है (वरुणः) वरणीयनवधा भक्ति पूर्वक पूजनीय श्रीराम जी (समुद्रं) वारिधि को (तिरोदधे) शिलाओं सेढाक किये (धीराः) औरेगां भी यंचित्त वाले बानर गण (धरुणेषु) भूमि धरण समर्थ धरण पर्वतों में (आरम्भम्) आरम्भ कर करने के लिये स्पर्श मात्र ही (शेकुः) करने के लिये शेष बाकि है उन पर्वतों को डूबाने के लिये अथवा तारने के लिये नतुशेकुः अर्थात् युक्त हुए भाव यह है कि इतने श्री प्रभुदयामय थे कि छूवने मात्र से कार्य की सिद्धि होती है जैसे यह ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि।

नैते ग्रावगुणा न वारिधि गुणा नो बानराणां गुणाः । श्रीमद्दाशरथेः प्रताप महिमारम्भः समुज्जृंभते"

जो डूबते हैं.औरों को डूबाते हैं वे प्रस्तराप षाण गम्भिर समुद्र में पर्वत अपने तरते हैं और वीर बानरों को भी तारते हैं। यह प्रभाव तो पर्वत का नहीं न समुद्र का न बानरों का किन्तु श्रीप्रभु का है ॥१५२॥

सहस्र धारेयत्ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ॥ अस्यस्प शान निमिषंति भूर्णयः पदे पदेपाशिनः संति सेतवः ॥ १५३॥

अथ प्रतिष्ठा श्रवः अब आप श्रीराम जी का प्रतिष्ठा यशस्रव चतुर्दश भुवनों में फैल गया है अतः आप ही निग्रह और अनुग्रह को कर्ता हो इसी लिये स्थान स्थान पर हम सबों को

रक्षा करो इस आशय को कहा जाता है (सहस्त धारे) नाम सोम याग में अभिष वणी ये अर्थात् यज्ञ संबंध कार्य निमित्त में (ते) वे प्रसिद्ध देवर्षि गण (समस्वरन्) अवश्य सोम याग सोतव्य नाम कर्तव्य है यह शब्द को करते हुवे कहा (दिवो) आकाश स्वर्ग में अर्थात् कर्म भूमि में (मधुजिह्वा) मधुरभाषी वा हितैषी जन यह जब तक (असश्वतः) सोमाभिषवणं बिना अर्थात् सोम याग के बिना गति हीन जो त्रैवर्णिक मनुष्य के प्रति समस्वरन् यह योजना है अर्थात् अवश्य सोम याग करना चाहिये यही कथन है। फलित को कहा जाता है (अस्य) सोमाभिमानी जो श्री विष्णु देव जी के समुद्र तीर में विश्वधारक श्रीराम जी के (स्पशाः) नाम चार दूत (पदेपदे) पदपद पर स्थित होते हैं (नचते) वे सब नहीं (निमिषन्ति) शयन के करते सदा सावधान रहते हैं। शयन रहित उपलक्षित देवा नाम बानर गण ही (अस्य) श्रीराम जी के चार हे वे सब (भूर्णयः) बहु प्रदायी है अर्थात् सब अवस्था में सेवक हैं (पाशिनः) पाशवन्त अर्थात् नखदन्त वृक्ष पर्वत रूप सस्त्र धारी हैं (सेतवः) पूल बनाने में पूर्ण ज्ञाता है और आप उनका अन्तर्यामी रूप से प्रेरक अर्थात् बुद्धिप्रद है वे देव रूप बानर सर्वत्र हम सबों को रक्षा करे। इससे पर सूक्त शेष प्रागेव उपोद्घात में व्याख्यान किया है ॥ १५३ ॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व १ स्परि॥
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परामार्त्ता ण्डमास्यत् ॥१५४॥

इस प्रकार स्तुति करके मुनि गण के जाने पर बाकी अवतार कृत कार्य को कहा जाता है।

"कमस्यमन्ये मिथुनाविवभो,, अन्नमभी स्यारोदयन्मुषायन्,,

यह पूर्वोक्त से हो चुका है वही किंचित् व्याख्यान किये गये उसमें भी अवशिष्ट बचा हुआ को ऋषि नाम वेद में मंत्र रूप ऋषि कहते हैं कि । जैसे श्रीलक्ष्मणादि तीन भाई श्रीरामजी के अनन्य है अर्थात् ऐक्य हैं इसी प्रकार श्री जी भी अनन्य है इसी लिये उन चारों श्री जी का (पुत्राः) पुत्र समुदाय (अदिति) अदितिशब्दित श्री जी का ही पुत्राः वे सब पुत्र हैं वे सब (अष्ठौ) कुशल व आदि आठ पुत्र थे वे सब और अदिति रूप पृथिवी का (तन्वः) शरीर का (परि) उपरि जात अर्थात् उदय अस्त तक के राजा हुए श्री रामादि चार प्रभुवों का आठ पुत्र आठ स्थान पर राजा हुए यह वृत्तान्त श्री रामायण में विस्तार पूर्वक विख्यात है वह जगन्माता श्री जी (देवान्) द्युलोक को पधार गयी । बाकि बचे (सप्तभिः) सात पुत्रों के साथ (उपप्रैत) उप गता नाम बाकी बचे वे कौन है गार्हस्थ्य चारों वर्ण बचे और तीन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी यह तीन आश्रमी है उन सवों को (परा) पर जो (मार्त्ताण्डम्) सूर्य मंडल से पर जो ब्रह्म लोक को (आस्यत्) स्थापित किये ॥ १५४ ॥

सप्तभिः पुत्रैरदिति रूप प्रैत्पूर्व युगं प्रजा यैमृत्यवेत्वत्पुनर्मार्त्ताण्डमा भरत् ॥ १५५ ॥

(पूर्वं युगं) ब्रह्म लोक को चले जाने पर (मृत्यवे) मृत्यु संबन्धि प्रजा के लिये मनुष्यों को बनाने के लिये (त्वत्) एक अंश को लेकर के (पुनः) फिर (मार्त्ताण्डम्) सूर्य को (आभरत्) आप्यायितवती नाम पूर्ण करते हैं उससे वृष्टि द्वारा पुनः भूमि

में प्रजा वृद्धि को करते भये पूर्वोक्त मंत्र में जो (सप्तभिपुत्रैः) सात पुत्रों से अर्थात् चारों वर्ण तीन आश्रमी (अर्दात) पृथवी का (उप प्रैत) उपगता नाम बाकि बचे (सप्तभिः पुत्रैः) चार वर्ण और तीन आश्रमी इन सात पुत्रों के साथ (अ दति) जगन्माता पृथवी (उपप्रैत्) उप गता चले गये अथवा बाकि बचे यह वाक्य प्रथम लिखना चाहिये गा पश्चात् पूर्व युगं लिखना ॥ १५५ ॥

भूमि भूमिम गान्माता मातर मप्यगात् ॥ भूयास्म पुत्रैः पशुभियों नो द्वेष्टि सभिद्यताम् ॥ १५६ ॥

इस से पहले ही श्री जी और श्रीलक्ष्मणजी अपने शरीर को (उपसंजहतुः) संहार किये (भूमिः) श्री जी (भूमिम्) पृथिवी में (अगात्) प्रवेश हो गये (माता) नाम नाप अर्थात् भूमि के अपने शिर से धारण करके शेष रूपी श्रीलक्ष्मण जी मातरम् अपने प्रकृति स्वभाव को धारणकिए अर्थात् अनन्त शेष बनगये (अप्य गात्) अपिगतः मिल गये हम सब (पुत्रैः) पुत्रों के साथ और (पशुभिः) पशुवों के साथ (भूयास्म) जो (योनोद्वेष्टि) जो हमारे सब के द्वेषी है रजकादि और दूसरा निन्दक मनुष्य (सः) वह सब (भिद्यातां) नाश होवे ॥ १ ६ ॥

नावान क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्ति भिरति दुर्गाणिविश्वा ॥ स्वांप्रजांवृह दुक्थो महित्वा वरेऽदधादाप रेषु ॥ १५७ ॥

उपाधिपत्त्रयातो नाम अवतार धारण करके अपने भक्त जनों के पक्ष करने वाले माया वीनिरंकुश माया कृतं अपने इच्छा से शरीर धारण करने वाले अतः मनुष्य मे अनुकूल हो कार्य किये (नावान) नौका से जैसे (क्षोदः) महारूद्र शिवजी जाते हैं काशी से कैलास को वैसे ही (स्वस्तिभिः) कल्याणों से अर्थात् पुष्पक आदि बिमानों से (पृथिव्याः) भूमि का (प्रदिशः) एक प्रदेशों का आकर के (स्वांप्रजाम्) अपने प्रजागणों को (विश्वा) समस्त (दुर्गाणि) संकट आदि को अत्यन्तपार करके (वृहदुक्थो) महा कर्म कारी श्रीरामजी (महित्वा) अपने महामहिमा से संतति रूप प्रजा को (अवरेषु) भुलोक में जन-रूप प्रजा को (परेषु) श्रीब्रह्म लोक में (अदधात्) स्थापित किये। इस कारन से पूरवासी जन और नगर से भिन्नजनआत्म लोकं अपने लोक को प्रापयन् ले गये महाकारुणिक श्रीराम भद्र जी ही शरण करने योग्य है दूसरा देव नहीं ॥ १५७ ॥

लक्ष्मणार्थ परतीं गिरा मिमां लक्ष्मणार्य पुरुषेणदर्शिताम् ॥ सांग वेदपद वाक्य मान वित्कोपि वीक्ष्य सुमतिः प्रमोदताम् ॥१॥

अर्थ श्रीलक्ष्मणार्य श्रीरामजी का ही यह वाणी परक है अतः श्रीलक्ष्मणार्य पुरुष से देखाया गया है। अंगके सहित वेद पद व्याकरण वाक्यमी मां सामान न्याय इन सब को जानने वाले कोई व्यक्ति देखकर सुन्दर मति वाले आनन्दित होंगे ॥ १ ॥

श्रीरामरक्षा व्याख्यानं मन्त्र रामायणा भिधम् ॥

व्याख्यातं राघवस्तेन प्रीयता करुणानिधिः ॥२॥

अर्थ श्री राम रक्षा का व्याख्यान रूप मंत्र रामायण नाम है। व्याख्यान की हुई मंत्र रामायण से करुणानिधि श्री-राघवेन्द्र भगवान प्रसन्न होवे ॥ २ ॥

दर्शितःसीतयाध्वायं वेदारण्येनिरध्वनि॥

संतोविपुलयंत्वेनं यास्क भाष्यानुयायिनः।३।

अर्थ देखाया हुआ जो सीतयाध्वायं नाम सीतया लकिर से मार्ग को ऐसे कहने पर वेद में लकिर कहा है मार्ग रहित वेद रूप बन में ॥ यास्क मुनि प्रणित निरूक्त को जानने वाले जो सन्त है और शायन भाष्य के जानने वाले जो सज्जन हैं वे ही इनको विपुल यन्तु जानेगे और नहीं ॥ ३ ॥

लेखक नीलकंठाचार्य कृत संस्कृतभाष्य
अनुवादक हिन्दी भाष्यकारी टाटाम्बरी जी
चित्रकूट श्रीजानकी कुण्ड श्रीरामानन्दाश्रम

॥ शुभं भवतु ॥